संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

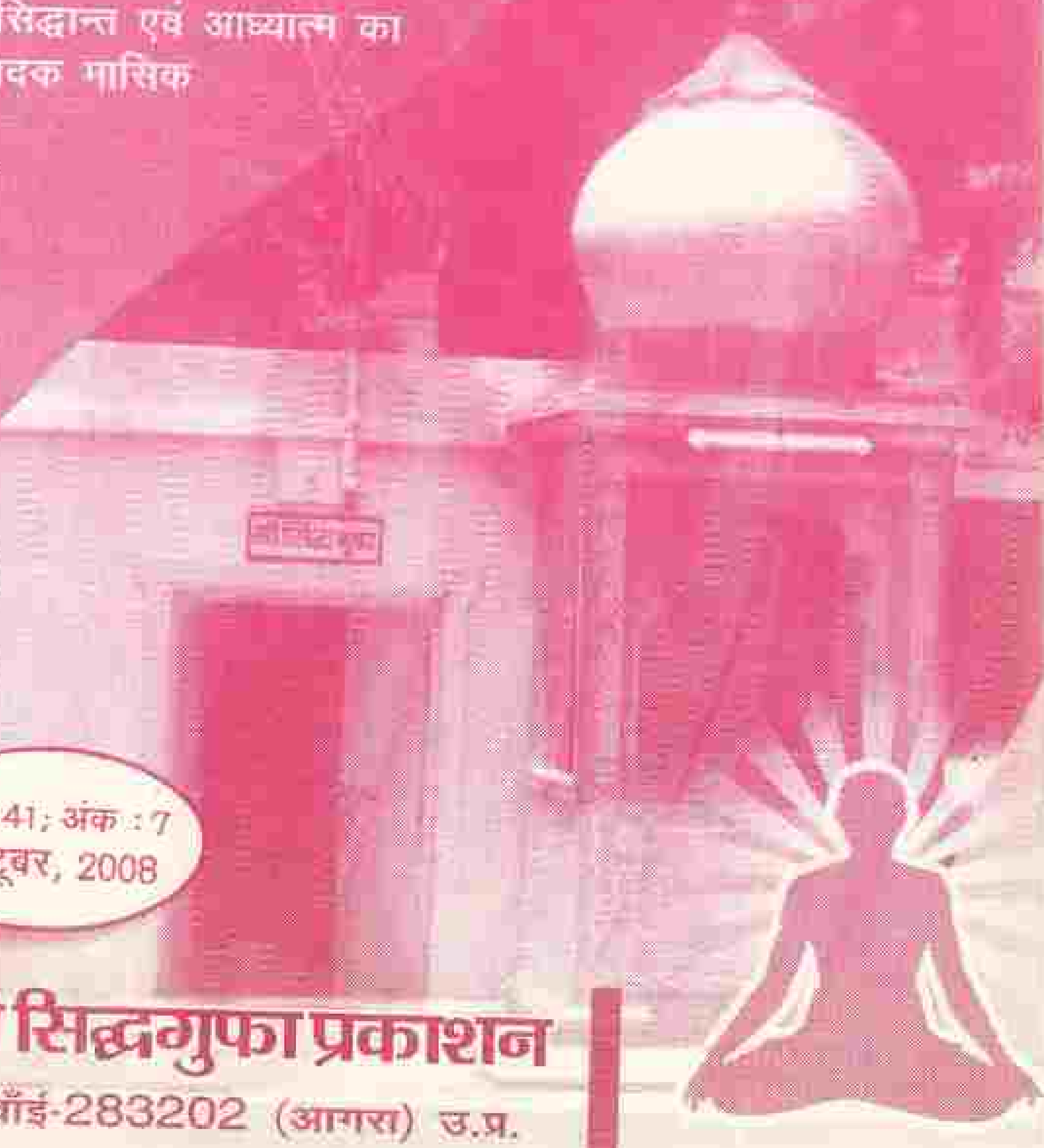

वर्ष : 41; अंक : 7
अक्टूबर, 2008

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

चाणक्य नीति से

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः।
विद्यारत्नेन यो हीनः स हीनः सर्ववस्तुषु॥

जो मनुष्य धन से हीन है, वह दीन-हीन नहीं है, यदि वह विद्यारूपी धन से युक्त है तो वह निश्चय ही महाधनी है परन्तु जो मनुष्य विद्यारूपी रत्न से हीन है, वह सभी वस्तुओं से हीन है।

● ● ●

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्।
शास्त्रपूतं वदेद् वाक्यं मनः पूतं समाचरेत्॥

मनुष्य आँख से अच्छी प्रकार देखकर पृथिवी पर पैर रखे, वस्त्र से छानकर जल पीये, शास्त्रों के अनुकूल हित, मित और कल्याणकारी वचन ही बोले तथा मन से सोच-विचार कर श्रेष्ठ और शुभ व्यवहार करे।

● ● ●

सुखार्थी चेत् त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी च त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्॥

जिसे सुख की अभिलाषा हो, उसे विद्या-प्राप्ति की आशा छोड़ देनी चाहिए और जिसे विद्या-प्राप्ति की इच्छा हो उसे सुख या विलासिता दे देनी चाहिए, क्योंकि सुख चाहने वालों को विद्या की प्राप्ति नहीं हो सकती और विद्यार्थी को सुख नहीं मिल सकता।

● ● ●

कवयः किं न पश्यन्ति किं न कुर्वन्ति योषितः।
मद्यपाः किं न जल्पन्ति किं न भक्षन्ति वायसाः॥

कवि लोग क्या नहीं देखते? स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं? शराबी क्या नहीं बकते और कौए क्या नहीं खाते?

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्ष : 41 अंक : 7

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्–
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो–
भूयिष्ठा ते नमउक्तिं विधेम।।
(ईशावास्योपनिषद्–18)

हे अग्निदेवता! मैं आज अपने परम प्रभु भगवान की सेवा में पहुँचना चाहता हूँ आप शीघ्र ही मुझे परम सुन्दर मंगलमय सरल सुगम मार्ग से भगवान के परमधाम पहुँचा दीजिये। आप मेरे कर्मों को जानते हैं। मैंने जीवन में भगवान की भक्ति की है। और उनकी कृपा से इस समय भी मैं ध्यान नेत्रों से उनके दिव्य स्वरूप के दर्शन और उनके नामों का उच्चारण कर रहा हूँ। तथापि आपके ध्यान में मेरा कोई ऐसा कर्म शेष हो, जो इस मार्ग में प्रतिबन्धक बन रहा हो, तो आप कृपा करके उसे नष्ट कर दीजिये। मैं आपको बार-बार विनय पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

अक्टूबर 2008

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 6
3. हो जाओ तैयार गाड़ी स्टेशन पर आती है – दीक्षा गोयल 9
4. गुरु क्या? – विनय मालवीय 10
5. महिमानं सर्वाइं धाम्न: वर्णने क: क्षम: सुधी: – द्वारका प्रसाद 15
6. प्राण तत्व क्या है? – डॉ. जे. पी. शर्मा 20
7. असीम की ओर – राजेश कुमार सिंह 25
8. ध्यान में लवलीन उसमें रहो!/प्रभु की शरण – त्रिजुगी नरायन मिश्र 26
9. प्रतिपल सहायक श्री गुरुदेव – केशवदेव उपाध्याय 27
10. महाप्रभु चन्द्रमोहन जी का प्रादुर्भाव – अवनीश कुमार भटनागर 30
11. हे योगिराज प्रभु रामलाल योगेश्वर हे भगवान – अमित कुमार मिश्र 34
12. प्रार्थना 35
13. सपने में मेरे गुरूजी आये! – जगदीश राय बंसल 36

    तौं भी तेरा मन भी तेरा – मोहन स्वरूप योगी
14. शून्य+शून्य हमेशा शून्य रहेगा – दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर 37
15. देही का स्वरूप – डॉ. जे. एन. राय 39

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

योगी का जात्यान्तर परिणाम

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

जात्यान्तर परिणाम का अर्थ है–एक जाति से दूसरी जाति में परिवर्तित होना। आम लोगों के सामने यह प्रश्न सदा सर्वदा बना रहता है कि एक योगी अपने आपको एक जाति से दूसरी जाति में कैसे परिवर्तित कर सकता है? मनुष्य तो मनुष्य ही रहेगा, वह गधा, खच्चर, घोड़ा आदि नहीं बन सकता। किन्तु ऐसी बात नहीं है। प्रकृति के खजाने में सभी तत्व सदा सर्वदा परिपूरित रहते हैं। योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में इस बात की पुष्टि की है:–

नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः।
उभयोऽपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः॥

अर्थात्–जो वस्तु नहीं है वह कहीं से आयेगी नहीं और जो है वह कहीं जायेगी नहीं। केवल मात्र परिणामान्तर होता रहता है। मनुष्य के शरीर में रोज नये–नये परिवर्तन होते रहते हैं। आज जो परमाणु शरीर में हैं कल वे नहीं रहेंगे, जो कल थे वे आज नहीं हैं। इस प्रकार से परिणामान्तर नित्य होता रहता है। जिस समय कोई बालक जन्म लेता है उस समय उसकी आकृति बहुत छोटी होती है। शनैः–शनैः वह जैसे–जैसे पौष्टिक आहार पाता रहता है, त्यों–त्यों उसका शरीर बढ़ता रहता है। इसे नैमित्तिक परिणाम कहते हैं। इसी प्रकार से जात्यान्तर परिणाम भी मनुष्य के स्वकृत कर्म विपाकानुसार होता रहता है। जो इस समय मनुष्य है, हो सकता है कालान्तर में अपनी आयु भोग लेने के बाद वह अपने अच्छे या बुरे कर्म–विपाकानुसार किसी अन्य जाति के अन्दर जन्म ले ले। उसकी मनुष्य जाति छूटकर किसी पशु–पक्षी आदि की जातियों में वह परिणत हो जावे। यह जात्यान्तर परिणाम महासिद्ध ईश्वर के संकल्पानुसार हुआ। योगी की भी इस प्रकार की सामर्थ्य हुआ करती है कि वह चाहे तो एक जाति से दूसरी जाति में परिणत हो सकता है, क्योंकि प्रकृति पर उसका पूर्णरूपेण अधिकार रहता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण लोक और वेद में सुनने में आते हैं। योगदर्शन में भगवान पतंजलिदेव जात्यन्तर परिणाम के विषय में निर्देश करते हैं:–

जात्यान्तर परिणामः प्रकृत्यापूरात्।

पूर्व परिणामापाय उत्तरपरिणामोपजनस्तेषामपूर्वावयवानुप्रवेशाद् भवति। कायेन्द्रियप्रकृतयश्च स्वं स्वं विकारमनुगृह्णन्त्यापूरेण धर्मादिनिमित्तमपेक्षमाणा इति।

जात्यान्तर परिणाम में पूर्व जन्म कर्म निमित्त को पाकर इन्द्रियाँ और अवयव प्रवेश कर जाते है। एक परिणाम दूसरे परिणाम में प्रवेश कर जाया करता है। इससे आगे के सूत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि–जीवात्मा एक जाति से दूसरी जाति में कैसे परिवर्तित होता है? यथा–

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनाँ वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्।

धर्मादि प्रकृतियों का निमित्त प्रयोजक नहीं कहा जा सकता।

किन्तु यह अवश्य होता है, जहाँ धर्म परिपूरित रहेगा वहाँ अधर्म नहीं होगा। जहाँ सूर्य का प्रकाश होगा वहाँ से अन्धकार स्वाभाविक ही नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार से जात्यन्तर परिणाम में भी जिस प्रकार एक कृषक ऊपर के खेत को जल से भरता है और खेत परिपूरित हो जाने के बाद यदि उसकी सीमा का भेदन कर दिया जाये तो नीचे के खेतो मे वह जल अपने आप ही भर जाया करता है। इसी प्रकार योगी जब जात्यान्तर परिणाम करने लगता है तो उसके शरीर के अवयव तथा इन्द्रियाँ अपनी स्थिति को बदलकर दूसरे परिणाम में प्रवेश कर जाते हैं और योगी का जात्यान्तर परिणाम हो जाता है। पढ़िये उपरोक्त सूत्र पर व्यासभाष्य की पंक्तियाँ:–

न हि धर्मादि निमित्तं तत्प्रयोजकं प्रकृतीनाँ भवति। न कार्येण कारणं प्रवर्त्तते इति। कथं तर्हि, वरण भेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्। यथा क्षेत्रिकः केदारादपाँ पूरणात्केदारान्तरं पिप्लावयिषुः समं निम्नं निम्नतरं वा नापः पाणिनापकर्षत्यावरणं त्वासाँ भिनत्ति, तस्मिन्भिन्ने स्वयमेवापः केदारान्तरमाप्लावयन्ति, तथा धर्मः प्रकृतीनामावरणधर्मं भिनत्ति, तस्मिन्भिन्ने स्वयमेव प्रकृतयः स्वं विकारमाप्लावयन्ति। यथा वा स एव क्षेत्रिकस्तस्मिन्नेव केदारे न प्रभवत्यौदकान्भौमान्वा रसान्धान्यमूलान्यनुप्रवेशयितुम्। किं तर्हि मुद्गगवेधुकश्यामाकादींस्ततोऽपकर्षति। अपकृष्टेषु तेषु स्वयमेव रसाधान्यमूलान्यनु प्रवेशयन्ति, यथा धर्मो निवृत्तिमात्रे कारणमधर्मस्य, शुद्धयशुद्धयोरत्यन्तविरोधात्। न तु प्रकृतिप्रवृत्तौ धर्मोहेतुर्भवतीति। अत्र नन्दीश्वरादयः उदाहार्याः। विपर्ययेणाप्यधर्मो धर्मं बाधते, ततश्चाशुद्धि परिणाम इति।

जात्यन्तर परिणाम मे वर्णभेद क्षेत्रिक के समान होता है, धर्मादि निमित्त उन देह प्रकृति आदि में प्रवर्तक नहीं होते, क्योंकि कार्य से कारक को प्रेरणा नहीं मिलती फिर किस प्रकार होता है। इसी बात को समझाने के लिये किसान का उदाहरण दिया गया है। इस धर्मादि निमित्त से किसान के समान वर्णभेद होता है। जैसे एक किसान जब एक जलभरी क्यारी से दूसरी क्यारी में जल ले जाना चाहता है तो वह अपने कायदे के अनुसार ऊपर की क्यारी से नीचे के क्यारी में और नीचे की क्यारी से उससे नीचे की क्यारी में जल को हाथों से नहीं खींचता, प्रत्युत उसके मेड़ को काट देता है। जिसके फलस्वरूप वह जल उससे आगे की क्यारी मे स्वतः परिपूरित हो जाता है। इसी प्रकार से जात्यान्तर परिणाम चाहने वाले योगी के

धर्म, देह और प्रकृति के प्रतिबन्धक स्वरूप उस अधर्म को नष्ट कर देता है जो अधर्म अभी तक योगी के देह, इन्द्रिय और अवयवों को मेंड़ बनकर जात्यन्तर परिणाम से रोके रहता है, वह हट जाता है। उसके हट जाने के बाद देह और इन्द्रियों की प्रकृति जात्यन्तर परिणाम के लिये अपने आप विकार को धारण कर लेती है। जैसे किसी किसान द्वारा खेत को जल से सींच दिये जाने के बाद उसमें उगने वाले पौधे चने, गेहूं, धान, मूँग आदि अपनी प्रकृति के अनुसार उस जल से रस को स्वयं खींचते हैं। किसान का काम तो इतना ही था कि उसने खेत में जल पहुँचा दिया, किन्तु उसके अन्दर रस भरना किसान की शक्ति से बाहर है। वह शक्ति ईश्वरीय देन है जो पौधों की जड़ों और बीजों में रहा करती है जो उन पौधों को जल से परिपूरित कर दिया करती है। वैसे ही धर्म भी अधर्म-निवृत्ति का कारण तो बनता ही है, किन्तु उसकी शक्ति को देह, इन्द्रियाँ और अवयव स्वतः ही खींचते हैं। शुद्धि और अशुद्धि में धर्म और अधर्म में अत्यन्त विरोध है। इसलिए धर्म प्रकृति के परिवर्तन में उपादान कारण न होकर निमित्त कारण होता है। इसमें नन्दीश्वर और नहुषादि के उदाहरण हैं। जैसे नहुष राजा को ऋषियों के शाप से तत्काल जात्यन्तर परिणाम हुआ, तत्काल ही उसका जाति-परिवर्तन हो गया। इसी प्रकार जब योगी अपने मन में यह सोचता है कि मैं अब इतने समय के लिए अपने आपको अमुक जाति में बदल लूँ तो उसके संकल्प मात्र से ही तत्काल परिणाम होने लगता है एवं उसका शरीर, इन्द्रियादि बदल जाया करते हैं।

OOO

भव-सागर में डूबते हुए जीवों के लिए विष्णु ही रक्षक हैं

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम्।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां भवतु शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम्।।

(श्रीमुकुन्दमाला ११)

'जो संसार-सागर में गिरे हुए हैं, (सुख-दुःखादि) द्वन्द्वरूपी वायु के थपेड़ों से आहत हो रहे हैं, पुत्र-पुत्री-स्त्री आदि के पालन-पोषण के भार से पीड़ित हैं और विषयरूपी विषम जलराशि में बिना **नौका के डूब रहे हैं**, उन पुरुषों के लिए एक मात्र विष्णुरूप जहाज ही शरण हो।'

संपादकीय

सद्गुरु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

आचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

सद्गुरुदेव आनन्दकन्द श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का पावन प्राकट्य ईस्वी सन् 1909 को हरियाणा प्रान्त में पानीपत जिला में अलुपुर गाँव में विजय दशहरा के पावन दिन हुआ था। आप को अवतारी कहें, योगी कहें, सद्गुरु कहें, इष्टदेव कहें या आत्मदेव कहें, सभी संज्ञायें आपके लिए उपयुक्त हैं। भगवान् अखिलात्मा त्रिजग पावन श्री कृष्णचन्द्र जी का तादात्म्य प्राप्त परम योगी गुरुदेव चन्द्रमोहन 'यथा नाम तथा गुण' के अनुसार अपने नाम को चरितार्थ किये हुए हैं। महापुरुष जिस भूमि पर अवतरित होते हैं उसे पहले ही चुन लेते हैं। गुरुदेव ने अपनी संक्षिप्त जीवन कथा 'दिव्य जीवन दर्शन' में इस बात को बताया है कि ध्यान योग में अवस्थित होकर उन्होंने पूर्व जन्म का वृत्तान्त देखना चाहा तो अनुभव किया कि वह शरीर काफी वृद्ध व जर्जर हो गया है। थोड़ी देर में वह शरीर छूटने लगा और वे तेजोमय शरीर से सर्वत्र घूम रहे हैं। अन्त: में अलुपुर गाँव में जहाँ इनका प्राकट्य हुआ है, उस घर पर तेजपुञ्ज स्थिर हो गया। कैसे प्राकट्य हुआ है इस बात का उन्हें स्मरण नहीं है। जन्म लेने के बाद शैशवावस्था में ही सोते जागते, खाते-पीते हर समय भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी का साक्षात्कार बना रहने लगा। आत्म तेज पुंज से ओत-प्रोत अपने को देखा करते थे। जागृतावस्था में भगवान श्री कृष्ण जी के साथ विभिन्न प्रकार के खेल खेलते व लीलायें करते रहते थे। बाल्यावस्था इसी प्रकार से बीती।

दो भिन्न धाराओं का अद्भुत सम्मिश्रण

गुरुदेव योगिराज जी के जीवन दर्शन में दो भिन्न धाराओं का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। गुरुदेव की पूज्या माँ चरती देवी पौराणिक विचारों की थीं। वे गुरुदेव को सनातन उपाख्यान सुनाया करती थीं। पूज्य पिता श्री पं. देवीराम जी कट्टर आर्य-विचारों के थे। उन्होंने अपना सारा जीवन- तन, मन, धन आर्य विचारों के प्रचार-प्रसार में लगाया। स्वयं दक्षिण भारत के हैदराबाद क्षेत्र में आर्य विचारों का उपदेश करते थे। सद्गुरु भगवान् सनातन धारा में साकार ब्रह्म की उपासना एवं विचारों से ओतप्रोत थे। जन्म जन्मान्तर से योगी थे। इसलिए प्राक्तन संस्कारों के अनुसार भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र के स्वरूप में तादात्म्य रखने वाले महापुरुष थे। इस कारण से बचपन में ही भगवत् साक्षात्कार बना रहता था। बड़े होने पर इनकी शिक्षा भी आर्य समाज की संस्थाओं में हुई। उच्च शिक्षा लाहौर में पाई। पद्म विभूषण से अलंकृत आचार्य विश्वबन्धु जी के महाविद्यालय में इनकी संस्कृत एवं दर्शन वाङ्मय की शिक्षा सम्पन्न हुई।

इस प्रकार से उनके जीवन में आर्य समाज के विचारों का भी आदर था। किंतु पूर्ण रूप से आर्य विचारों से सहमत नहीं थे। फिर भी स्वामी दयानन्द जी के आदर्श, विचार एवं व्यक्तित्व की छाप गुरुदेव के जीवन में देखने को मिलती है। भगवान् कृष्ण को वे सामान्य योगी ही नहीं मानते थे अपितु अखिलात्मा जगतपावन परब्रह्म परमेश्वर मानते थे। गुरुदेव श्रोत्रीय एवं ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष के शरण में जाकर योग विद्या को सीखने का आदेश है। गुरुदेव योग शास्त्र व उपनिषदों के पारंगत थे साथ ही योगानुभूति से परिपूर्ण थे। उन्हें ही ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष शास्त्रों में कहा गया है।

15–16 वर्ष की अल्पायु में ही आपको अपने गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का दिव्य सानिध्य प्राप्त हो गया। योग–दीक्षा लेने के बाद आप श्री वृन्दावन धाम चले गये। जाते समय श्री प्रभु जी ने गुरुदेव जी को आज्ञा दी कि वृन्दावन में रहते हुए प्रात: 5 से 7 बजे का समय हमेशा ही ध्यानाभ्यास में लगाना। गुरुदेव भगवान् कहा करते थे कि उन्होंने हमेशा इस आज्ञा का पालन किया। श्री प्रभु जी ने इन्हें अपने समय में ही योग दीक्षा देने की आज्ञा प्रदान कर दी थी। एक दिन ऋषिकेश आश्रम में निवास करते हुए एक आर्य सन्यासी योग दीक्षा लेने के लिए गुरुदेव के पास आये। गुरुदेव ने एक पत्र आनन्दकन्द श्री प्रभु जी को अल्मोड़ा भेजा और पूछा– "एक सन्यासी दीक्षा लेने के लिए आये हैं, क्या मैं उसे दीक्षा दे सकता हूँ।" श्री प्रभु जी ने उत्तर में लिखा– "तुम उन्हें अवश्य दीक्षा दो, चाहे कोई सन्यासी या और कोई हो पात्रता देखकर अवश्य दीक्षा देना।" ये सन्यासी ब्रह्मचारी भीष्म थे और घरौण्डा करनाल में निवास करते थे। श्री प्रभु जी ने अपने पत्र में यह भी लिखा था– "तुम सब प्रकार से समर्थ हो। तुम्हें सर्व शक्तिमान ने वृन्दावन निवास काल में ही सर्वशक्तियाँ दे दी है।" श्री गुरुदेव भगवान अपने मुखारविन्द से कहा करते थे कि श्री प्रभु जी की कृपा से ऐसी कोई योग की विभूति या सिद्धि अवशेष नहीं है जिसे उन्होंने प्राप्त न किया हो।

सन् 1938 में श्री प्रभु जी के लीला संवरण के पश्चात् गुरुदेव जी ने श्री सिद्ध गुफा सवाई को ही अपना कार्यक्षेत्र चुना और यहीं से योग प्रचार का व्यापक कार्यक्रम आरम्भ किया। सुडौल, ठोस वपु, मृदुभाषी, अत्यन्त सरल स्वभाव, निरभिमानिता आदि दिव्य एवं अलौकिक गुणों के स्वामी थे हमारे गुरुदेव जी। बड़े से बड़े कार्यों की उच्चतम उपलब्धि के लिये हमेशा वे कहा करते थे कि 'श्री प्रभु जी ही करण–कारण है, उनकी कृपा से ही सब कुछ हो रहा है।' शिष्यों को योग दीक्षा देते समय अपने गुरुदेव श्री प्रभु जी का स्वरूप अपनी छाती से लगाकर, अपने को निमित्त मानकर शक्तिपात योग दीक्षा देते थे। दीक्षा देते ही उज्ज्वल संस्कार वाले साधकों को हठयोग से प्राण–शोधन कुण्डलिनी जागरण की अद्भुत क्रियायें स्वत: ही होने लगती थीं। इसमें गुरुदेव का संकल्प ही कारण होता था। साधक को नहीं पता होता था कि ये सब क्या और क्यों हो रहा है? किंतु कुण्डलिनी के मार्ग का शोधन गुरुदेव के संकल्प से स्वत: होता था। वे प्राय: ही कहा करते थे। 'हलुआ तो उनका ही है मैं तो कलछी की

तरह बनकर हलुआ परोस रहा हूँ।' कितने उदात्त भाव थे गुरुदेव के! महापुरुष कैसे व कौन होते हैं? इसका उत्तर व्यक्तित्व एवं आचरण से मिल जाता था। अत्यन्त कोमल चित्त था उनका। कभी किसी पर क्रोध नहीं करते थे। भला आत्मनिष्ठ योगी किससे क्यों क्रोध करे। गुरुदेव ने जहाँ योग के सिद्धान्तों को अपने शिष्यों के अन्दर कूट-कूट कर भर दिया था, वहीं पर योग की गुप्त क्रियायें स्वतः ही होती थीं। इस प्रकार से **''यस्तु क्रियावान सः पण्डितः''** इस उक्ति को गुरुदेव के चरणों में चरितार्थ होते देखा जाता था। इन सब क्रियाओं के पीछे गुरुदेव का परम आह्लाद ही कारण होता था। परम दयालु गुरुदेव अपने बच्चों के सकल मनोरथ को पूर्ण करने वाले होते हैं। किसी भी परेशानी, संकट में जो उनका चिन्तन करते हैं उनके वे सब संकट तत्काल दूर हो जाया करते हैं। शिष्य के लिए गुरुदेव विघ्नहरण देव होते हैं। शिष्य नाम रूप से गुरुदेव का नाम व रूप से जुड़ा होता है। इसलिए शिष्य के चित्त में उनकी स्मृति व आकृति प्रतिबिम्बित रहती है। गुरुदेव अपने श्रीमुख से स्वयं कहा करते थे- ''जहाँ इष्ट होता है वहाँ कभी अनिष्ट नहीं हुआ करता।'' शास्त्रों में आया है- गुरुदेव, इष्टदेव व आत्मदेव में कभी भेद नहीं मानना चाहिए। गुरुगीता में सिद्धगुरु को भी परम तत्व कहा है- **''नास्ति तत्व गुरोः परम्।''** गुरुदेव से बढ़कर कोई तत्व नहीं है। सिद्धगुरु ही अपने विनयशील शिष्यों पर शक्तिपात कर सकता है। योग दर्शन के व्यास भाष्य में आया है **''ब्रह्मचारी विनयेषु शक्तिमाधातुम् समर्थो भवति।''** अर्थात् अखण्ड ब्रह्मचारी अपने शिष्यों में योग शक्ति का आधान कर सकता है। आजकल थोड़े से योग की क्रियाओं को जानने वाले असंयमी लोग शक्तिपात एवं कुण्डलिनी जागरण करा देने का दम भरते हैं। जो नितान्त भ्रामक है। महाप्रभु रामलाल जी महाराज एवं उनके शिष्य गुरुदेव योगीराज जी जैसे समर्थ सिद्ध ही अपने संकल्प मात्र से शिष्यों में शक्ति प्रक्षेप कर सकते हैं। साधारण योगियों में सामर्थ्य नहीं होती। गुरुदेव ने योग के क्षेत्र में जो भी कार्य किये हैं उन्हें योगि समाज कभी नहीं भूल सकता। वे **''नक्षत्राणां शशी''** की तरह योग के नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा की भाँति शोभायमान रहते थे। कई अखिल भारतीय योग-सम्मेलनों में तथा विश्व योग सम्मेलनों में उन्होंने अध्यक्ष पद को अलंकृत किया। सन् 1986 में विश्व योग सम्मेलन में उन्होंने अध्यक्ष पद को शोभायमान किया। तत्कालीन राष्ट्रपति श्री ज्ञानी-जैलसिंह जी ने उन्हें इस विराट सम्मेलन में योग शिरोमणि उपाधि से विभूषित किया। राजनैतिक क्षेत्र के भक्तों में स्व. राजनारायण का नाम प्रथम आता है। वे आपके परम भक्त एवं योग निष्ठ बच्चे थे। इनके स्वभाव, त्याग एवं गुरु निष्ठा से गुरुदेव अति प्रसन्न रहते थे। यही कारण था कि मृत्यु के अन्तिम क्षणों में तथा देह त्याग के बाद अन्त्येष्टि संस्कार के समय वाराणसी में गुरुदेव विद्यमान रहे और हृदय से नेताजी को आशीर्वाद देते रहे।

सन् 1978-79 में केन्द्र सरकार के 'योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा' के अन्तर्गत योग के तकनीकि विभाग के अध्यक्ष रहे। उसी समय योग आश्रमों को अनुदान आदि देना तथा

पूज्य गुरुदेव भगवान !

योगयोगेश्वर

अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग को विद्यालयों में एक पृथक् विषय के रूप में सम्मिलित करना आदि कार्यों का सूत्रपात गुरुदेव ने किया। इस प्रकार से योग के लिए गुरुदेव का उल्लेखनीय योगदान रहा है। गुरुदेव अपने भक्तों के लिए 'कल्पतरु' के समान हैं। जो जैसा मांगता है गुरुदेव उसे वही देते हैं। योग जैसी अमृत व अमर विद्या को गुरुदेव ने अपने शिष्यों को प्रदान किया है। उनसे योग दीक्षा प्राप्त सैकड़ों योगी कन्दराओं में साधनारत हैं। गृहस्थ समाज में भी लाखों साधक दिव्य योग मार्ग का अवलम्ब लेकर अध्यात्म मार्ग में आगे बढ़ रहे हैं। अपने बच्चों के प्राणाधार हैं गुरुदेव जी। "**अद्वैत भावयेत भक्तया गुरोर्देवस्य चात्मनः**" शिष्य को गुरुदेव में इष्टदेव में तथा आत्मदेव में कभी भेद नहीं मानना चाहिए। इस वर्ष उनका 99वाँ प्राकट्य दिवस उनके सभी आश्रमों, केन्द्रों में 9 अक्टूबर को हर्षोल्लास के साथ मनाया जा रहा है।

इस परम पावन अवसर पर गुरुदेव के श्री चरणों में कोटि–कोटि नमन है!

OOO

हो जाओ तैयार गाड़ी स्टेशन पर आती है।

दीक्षा गोयल, सहारनपुर

हो जाओ तैयार गाड़ी स्टेशन पर आती है,
राम नाम का टिकट कटाले एक आती एक जाती
है।

1. *हो जाओ———*
वेद, शास्त्र, रामायन, गीता।
लाईन हमें बताती है,
लख चौरासी स्टेशन होकर
जंक्शन पर रुक जाती है।
हो जाओ———

2. *सफेद बाल और हिलते दाँत,*
ये चमड़ी लटकी जाती है,
चेत मुसाफिर टिकट कटाले,
लाईन क्लीयर जाती है।
हो जाओ———

3. *कमर तो तेरी टेढ़ी होकर,*
सिग्नल डाऊन बताती है,
सगे सम्बन्धी छोड़ दे दोनों,
माया साथ ना जाती है,
धर्म–कर्म की बाँध ले गठरी
साथ यही तो जाती है,
हो जाओ———

4. *ड्राईवर इसका मनी राम हैं,*
टिकिट गुरु से मिलती है,
धर्म राम है चैकर इसका
जीवन गाड़ी चलती है।
हो जाओ———

गुरु क्या?

विनय मालवीय, इलाहाबाद

आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में पड़ने वाली पूर्णिमा आध्यात्मिक दृष्टि से साधकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हुआ करती है। इसे 'गुरु पूर्णिमा' के नाम से जाना जाता है। इसी पर्व पर 'महाभारत' के रचयिता और बादरायण के नाम से वैदिक मंत्रों और दर्शन शास्त्र के सूत्रों की मीमांसा करने वाले प्रख्यात महापुरुष महर्षि 'वेदव्यास जी' का जन्म दिन होने के कारण इसे '**श्री व्यास पूजा**' के रूप में भी मनाया जाता है। इस दिन सभी साधकगण अपने–अपने गुरुदेव का पूजन करते हैं। अपने श्रद्धासुमन समर्पित करते हुए बड़े हर्षोल्लास के साथ श्री सद्गुरुदेव जी की सम्यक उपासना और उत्सव का आयोजन भी किया करते हैं।

'गुरु' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है और इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। किंतु इस पर्व पर जिस 'गुरु' को याद किया जाता है उसके विषय में भगवान शंकर ने 'गुरु गीता' में विस्तृत वर्णन किया है। इसमें (गुरुगीता में) पार्वती जी ने देहधारियों (मनुष्यों) के लिए 'ब्रह्म–मय' बनने का उपाय जानने की जिज्ञासा प्रकट की है और उत्तर में भगवान शंकर ने (परात्पर जगत् गुरु रूप में) मुख्य रूप से गुरु–प्रदत्त साधन अपनाने, श्री गुरुदेव की भक्ति करने और उनका ध्यान करने का उपदेश दिया है। किंतु उपदेश देने के पूर्व प्रारम्भ में ही तथा गुरुदेव जी की भक्ति और ध्यान की विधि बताने के साथ ही भगवान शंकर ने हर बार विशेष रूप से उनके मूल तात्विक स्वरूप की ओर ध्यान आकृष्ट करने हेतु विभिन्न प्रकार से 'गुरु' शब्द की व्याख्या की है जो इस प्रकार है:–

गुशब्दस्त्वन्ध शब्दस्तन्निरोधक:। अंधकार निरोधित्वाद, गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थात् : '**गु**' शब्द का अर्थ है अंधकार और '**रु**' शब्द का अर्थ है अन्धकार को नष्ट करने वाला (प्रकाश)। अन्धकार के वेग को रोक करके प्रकाश देने वाली शक्ति का नाम 'गुरु' है और वह स्वयं प्रणव स्वरूप है।

अन्य दो स्थलों पर 'गुरु' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गयी है:–

गुकार: प्रथमोवर्णो मायादिगुणभासक:। रुकारो द्वितीयोब्रह्म मायाभ्रांति विमोचक:।।

अर्थात् : गुकार प्रथम वर्ण माया आदि गुण का भास कराने वाला है। दूसरा रुकार ब्रह्म है जो माया की भ्रांति का नाश करने वाला है।

मन्त्रराजमिदंदेवी गुरुरित्यक्षरद्वयम्। श्रुतिवेदान्त वाक्यानां गुरु: साक्षात्परं पदम्।।
गुकारं च गुणातीतं रुकारं रूपवर्जितम्। गुणातीतमरूपं च योहिस्यात्सगुरु: स्मृत:।।

श्रुति और वेदान्त वाक्यों में 'गु', 'रु' ये दो अक्षर मन्त्रराज है। गुरु साक्षात् परम पद

है। गुकार गुणों से अतीत है, रुकार रूप से रहित है, जो गुणों से अतीत और रूप रहित है वह गुरु कहलाता है।

वास्तव में सद्गुरु देव जी के शारीरिक स्वरूप से अधिक उस स्वरूप में कार्य कर रही परात्पर सत्ता का हुआ करता है। इनमें प्रकाशित हो रही परमात्मा की परम सत्ता ही उनके श्री विग्रह के महत्व का मूल कारण हुआ करता है। यही कारण है कि अंतरदृष्टि के अभाव में और तथ्यों की सही जानकारी न होने के कारण रामायण आदि सद्ग्रंथों और पुराणों में हमें अनेकानेक विरोधी प्रतीत होने वाले प्रकरण दिखायी देते हैं। कहीं भगवान शंकर राम के उपासक दीखते हैं तो कहीं राम भगवान शंकर की उपासना करके उनसे 'पाशुपत् अस्त्र' प्राप्त कर रावण का वध करते हैं। कहीं भगवान शिव भगवान कृष्ण की बाल लीला के समय उनके दर्शनार्थ गोकुल पधारते हैं और उन्हें अपना इष्टदेव बतला करके यशोदाजी से प्रार्थना करके उनके दर्शन करते हैं और वहीं द्वारिका वास के समय में रुक्मिणी जी से पुत्रोत्पत्ति के निमित्त उपमन्यु ऋषि से दीक्षा ग्रहण करके भगवान कृष्ण ने बारह साल तक घोर तप किया जिसके फलस्वरूप प्रद्युम्न का जन्म हुआ। इसके साथ –साथ भगवान श्री कृष्ण नित्य नियम से भगवान शिव का पार्थिव पूजन भी किया करते थे। एक बार इसी पूजा के समय मार्कण्डेय आदि मुनिगण भगवान कृष्ण के दर्शनार्थ आये और भगवान श्रीकृष्ण की शिव उपासना को देखकर बड़े आश्चर्य में पड़ गये और स्वयं भगवान श्रीकृष्ण से ही प्रश्न कर बैठे–

त्वं विष्णुः कमलकांतः परमात्मा जगद्गुरुः।
तव पूज्यः कथं शम्भूरेतत् सर्व वदास्मान्।।

अर्थात् हे कृष्ण तुम स्वयं परमात्मा जगद्गुरु विष्णु हो तुम्हारे पूज्य भगवान शिव किस प्रकार है यह बात हमारी समझ में नहीं आयी। इसलिए हमें स्पष्ट खोलकर समझाओ कि भगवान सदाशिव तुम्हारे आराध्यदेव किस प्रकार हैं? भगवान श्री कृष्ण ने उत्तर दिया– हे मुनि मार्कण्डेय! यद्यपि तुम तात्विक बात को जानते हो फिर भी तुमने लोकहित के विचार से जो प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हें समझाकर बतलाता हूँ। जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ उसका वर्णन सावधान हो कर सुनो।

ज्योतिर्यत् परमानन्दं सावधानमतिः श्रृणु। वामांगादमेव तस्य सोहंविष्णुरिति स्मृतः।।
जनयामास धातारम् दक्षिणांगात्सदाशिवः मध्यतो रुद्रमीशानं कालात्या परमेश्वरः।।
तपस्तपन्तु भावत्सा इति तानब्रवीच्छिवः।

अर्थात् जिस परमानन्द ज्योति की मैं उपासना करता हूँ वह भगवान महादेव जी हैं। मैं उनके वाम भाग से पैदा हुआ इसलिए विष्णु नाम से विख्यात हूँ। उन्होंने अपने दक्षिण भाग से ब्रह्माजी को पैदा किया और मध्य से रुद्रजी को पैदा किया और हम सबकी उत्पत्ति हो जाने के बाद भगवान महादेवजी ने आज्ञा दी कि हे पुत्रों तुम तप करो।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों के मूल कारण कोई और ही है

और वह सत्ता उनसे भी आगे की है। ब्रह्मा, विष्णु,शिव आदि सभी देवी–देवता उसी परब्रह्म के प्रतीक मात्र हैं। शास्त्रों मे और पुराने इतिहास में 'श्री गुरुदेव की' बहुत बड़ी महिमा का वर्णन है और उन सबका अंतिम निष्कर्ष यही निकलता है कि ब्रह्मा–विष्णु–शिव सभी देव उस तत्व की आराधना से ही ब्रह्मा–विष्णु–शिव हैं अन्यथा सर्वसाधारण मनुष्यों जैसे मनुष्य ही हैं। यही अभिप्राय है 'गुरु–गीता' में भगवान शिव के इन वचनों का–

गुरोः कृपा प्रसादेन ब्रह्मा–विष्णु–महेश्वराः। सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया:।।

केवल परमात्मा की यह परम सत्ता ही इस प्रकार की है जो काल की सीमा से भी परे है। सद्गुरु के लिए भी यही कहा गया है–

यत्रावच्छेदनार्थे कालो नोपावर्तते स गुरुः।

अर्थात् जिसका अन्त करने के लिए काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है जिसका न कोई आदि है और न अन्त है वही सत्ता सद्गुरु तत्व है। अतः तत्व की बात तो यही है कि जिसके शरीर में आदि अन्त रहित उस निर्गुण सत्ता का प्रकाश हो जाता है वही गुरुपद वाच्य है। योग सिद्धान्त के अनुसार जो योगी कृतकृत्य हो चुका है, जिसकी परम लक्ष्य तक पहुंचाने वाली वृत्ति ही शेष है और वह भी हर समय अस्मि, अस्मि, अस्मि का ही जाप किया करती है (जिसको निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहते हैं), जो योगी ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा हो करके कूट–स्थिति में पहुंच गया है और जिसकी केवल यह निर्वाणोन्मुखी वृत्ति ही शेष है, जो अपने आपको सर्व भूतस्थ देखता है और सर्वभूतों को अपने अन्दर देखता है उसकी दृष्टि में द्वैत खत्म हो गया है। भेद भाव की श्रृंखला टूट चुकी है इस प्रकार का व्यक्ति भी योग–युक्त होने से गुरु पद वाच्य है। चूंकि आत्म साक्षात्कार का अंतिम पायदान साधक अपने पुरुषार्थ से नहीं प्राप्त कर सकता और वह स्थिति ईश्वर/सद्गुरु की कृपा से ही उपलब्ध होती है इसीलिए गोसाई जी ने कहा है–

जो जानहि तेहि देउ जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि होई जाई।

सहजो बाई का तो यह भी कहना है कि–

पिता से माता सौ गुना करती सुत सों प्यार।
माता से हरि सौ गुना हरि से गुरु सौ बार।।
सात द्वीप नव खण्ड में सद्गुरु जी से बड़ा न कोय।
कर्ता करै न करि सकै सद्गुरु करहिं सो होय।।

इसका कारण यह है कि निर्गुण, निराकार परब्रह्म तो केवल निष्क्रिय भाव से साक्षीरूप में प्रकृति के सारे खेल देखता रहता है।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः। न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।।

अर्थात् : परमेश्वर मनुष्यों के न तो कर्तापन की, न कर्मो की और न कर्मफल के

संयोग की ही रचना करते हैं, किंतु प्रकृति ही बरत रही है–

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।

अर्थात् : सर्वव्यापी परमेश्वर न किसी के पापकर्म को और न किसी के शुभकर्म को ही ग्रहण करता है, किंतु माया के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसी से सब अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं। किंतु सद्गुरुदेव अपने शिष्यों और भक्तों के साथ–साथ प्राणिमात्र के कल्याण हेतु सतत् प्रयत्नशील रहता है। इसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा ने तो केवल यह व्यवस्था कर रखी है–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

अर्थात्: जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभाव से भजते हैं, उन नित्य–निरंतर मेरा चिन्तन करने वाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त करा देता हूं।

परात्पर जगत्गुरु भगवान शंकर वहीं गुरु गीता में कहते हैं–

ज्ञानशक्तिसमारूढं तत्वमालाविभूषितम्।

भुक्तिमुक्तिप्रदातारं तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अर्थात् : ज्ञानशक्ति पर आरूढ़, तत्व माला से शोभित, भोग और मोक्ष देने वाले उन श्री गुरुदेव को नमस्कार है। और

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां सुलभं परमंपदम्।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोराराधनं कुरु।।

अर्थात् : मेरा अनन्य चिन्तन करने से परम पद सुलभ होता है। इसलिए सर्व प्रयत्न से गुरुदेव की आराधना करें।

कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा। यह व्यवस्था तो सृष्टि के रचयिता ने कर रखी है और सद्गुरु क्या किया करता है इसका उल्लेख गुरु गीता में इस प्रकार किया गया है–

अनेक जन्म संप्राप्त कर्म बन्ध विदाहिने स्व आत्मज्ञान प्रदानेन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अर्थात् : अनेक जन्मों से प्राप्त हुए कर्मरूप बंधन को जलाने वाले और आत्मज्ञान प्रदान करने वाले श्री गुरुदेव को नमस्कार है।

न गुरोरधिकम् न गुरोरधिकम्, न गुरोरधिकम्, न गुरोरधिकम्।

शिव शासनतः शिव शासनतः, शिव शासनतः शिव शासनतः।।

ब्रह्मविद्योपनिषद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि परम श्रेय लाभ करने के लिए वेद विदित उपासना आदि का विषय छोड़कर मनुष्य को गुरु–भक्ति करनी चाहिए। गुरुगीता में भगवान शंकर कहते हैं:–

धन्या माता पिता धन्यो, धन्यो वंशः कुलं तथा।
धन्या च वसुधा देवि, गुरुभक्तिः सुदुर्लभा।

किन्तु यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इस कलिकाल में ऐसे सद्गुरु मिलते हैं कहाँ? यदि मिल भी जायें तो हम उन्हें समझ ही नहीं पाते। भगवान शंकर ने गुरुगीता में कहा है–

गुरुवो बहवः सन्ति शिष्य संताप हारकाः।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्य संताप हारकम्।।

फिर भी श्री गुरुदेव जी का कहना है कि प्रत्येक साधक को अपने गुरुदेव के प्रति

मन्नाथस्त्रिजगन्नाथे मद्गुरुस्त्रिजगद्गुरुः। ममात्मासर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

इस श्लोक की भावना तो रखनी ही चाहिए।

धन्ना जाट को किसी पंडित ने बहकाने के लिए कह दिया कि उसके हाथ में जो पत्थर का टुकड़ा है उसी में श्याम सुन्दर छिपे हैं और उसने अपनी श्रद्धा के बल पर उसी में से श्याम सुन्दर को ढूंढ निकाला।

संसार में ऐसे सद्गुरु का सान्निध्य प्राप्त करना वास्तव में बड़े सौभाग्य की बात है। पार्वती जी ने भगवान शंकर से प्रश्न किया था–

'केन मार्गेन देही ब्रह्ममयो भवेत' और भगवान शंकर का सीधा सा उत्तर था–

किंचित गुरुं बिना नान्यत, सत्यं सत्यं बरानने।

अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के लिए गुरु प्रदत्त मार्ग के अतिरिक्त और कोई मार्ग है ही नहीं। भगवान शिव ने ब्रह्मा जी को भी इसी आशय का उत्तर दिया था।

देहान्ते ज्ञानिभिः पुण्यात्पापाच्च फलमाप्यते। ई दृशं तु भवेत्तद् मुक्त्वा ज्ञानी पुनर्भवेत्। पश्चात् पुण्येनप लभते सिद्धेन सह संगतिम्। ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा। ततोनश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।।

निष्काम कर्मयोग के अभ्यास से विविध प्रकार के पुण्यों को उपार्जित करता हुआ व्यक्ति उत्कृष्ट पुण्य बढ़ जाने पर अवश्य ही सिद्धसंगति को प्राप्त कर लेता है और फिर सिद्धानुकम्पा से वह योगी बनता है। जब तक मनुष्य सिद्धानुग्रह भाजन नहीं बन जाता तब तक वह मोक्ष के द्वार तक नहीं पहुँच पाता।

OOO

महिमानं सवांई धाम्न: वर्णने क: क्षम: सुधी:

द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

भाई श्री द्वारका प्रसाद शर्मा जी ने श्री सिद्ध गुफा-सवाई धाम की महिमा में 'महिमानं सवाई धाम्न: वर्णने क: क्षम: सुधी:' शीर्षक से एकोत्तर शतक (एक सौ एक) श्लोकों को देव भाषा में निबद्ध किया है। इन श्लोकों में महाप्रभु जी के अलौकिक चरित्र एवं धाम की अक्षुण्ण महिमा का गान हुआ है। श्री सिद्ध गुफा केवल भौतिक स्थान का नाम ही नहीं है अपितु सिद्ध पुरुषों से वन्दित एक तत्व का नाम है। श्री शर्मा जी गुरुदेव भगवान के लाड़ले विद्वान शिष्यों में से एक हैं। अपने अति उदात्त भावों को इन श्लोकों में इन्होंने पिरोया है।

इस शीर्षक का शब्दार्थ यह है कि श्री सिद्ध गुफा धाम की महिमा वर्णन करने में कौन समर्थ है? श्लोकों के पद सरल व बोध गम्य होने के कारण हिन्दी रूपान्तर नहीं किया गया है। आशा है सुधी पाठकों को अर्थ समझने में कठिनाई नहीं होगी। जय गुरुदेव।

— सम्पादक सिद्धयोग

1

तप: स्थली यां समलल्लकार, स्वस्योग्रतपसा प्रभुरीश्वर: स्वयम्।
सैव स्थली सिद्धगुफेति नाम्ना, सवाँई कीर्तिं द्विगुणीचकार।।

2

जानाति वै ग्राममिमं प्रभु: कथं, अवातरत् केन प्रयोजनेन।
अन्यानि स्थानानि बहूनिचासन्, रम्याणि दीर्घाणि च विस्तृतानि।।

3

यतो यत: श्री चरणाम्बुजौ गतौ, तीर्थानि तावन्ति कृतानि तानि।
अतो रहस्यं ननु विद्यमानं, निखिलापि लीला समुद्दिश्य काचित्।।

4

पुण्यं महद्भूरिकदाचिदासीत्, तेषां जनानां चरणार्पिता ये।
किमन्ये जनास्तत्र तदा न न्यवसन्, संस्कारहीना विमुखा विधर्मिण:।।

5

यदा यदा वै कृतनिश्चय: प्रभु:, भक्तान् स्वकीयान् भवतारणोत्सुक:।
वपु: दधत् क्रीडन् लीलयैव, समुद्धरत् वान् बहुभि: स्वरूपै:।।

6

कस्तस्य लीलामधिगन्तुमीश:, योऽनन्तरूप: करुणार्णवश्च।
मनोमहिम्नऽप्यनुगन्तुमक्षमं, क्वपारयेत् तं गिरयास्वधिष्ण्या।।

7

यथा श्रुतिर्गायति वागभीक्ष्णशः, स नेति नेतीति मुहुर्मुहुर्वचः।
तथाऽव्ययसौ नः त्रयदेवरूपः, योगीश्वराणां परमेश्वरो हरिः।।

8

योगस्य साक्षात् प्रतिमूर्त्तिमन्त्, निज स्वरूप परिकल्पितेन।
अवातरच्चापिचचार भूमौ, संवाई ग्रामे निज धाम्न आगतः।।

9

क्वाहं सदैव विषयानुरागी, कुतः स सम्राट् च विरागिणां प्रभुः।
जानामि मात्र सुखमिन्द्रियाणां, अतीन्द्रविषये किं वर्णयिष्ये।।

10

योऽनन्तरूपः सुखसागरो यः, सदैक रूपः परमेश्वरः शिवः।
यो निर्विकल्पः सदृशो न यस्य, अलक्ष्यलक्ष्यः किं लेखनार्हः।।

11

श्रृणोमि तावत् पठितः कुतश्चित्, स ईश्वर स्तिष्ठति हृत्प्रदेशे।
सर्वेषु भूतेषु स एव प्रेरकः, तथैव तत्कारयते यथेहते।।

12

कुतस्त्वत्वहं तत्र यतः स्वयं सः, करोमि तद्यत् स यथेरते माम्।
न वच्म्यहं नैव लिखामि किंचित्, स्वयं स वक्ता स्वयमेव लेखकः।।

13

अतो न दोषो मयि भावनीयः, करोति सः कारयते स एव।
गुणानुवचने न मदीयवाक् सा, तस्यास्ति सैवास्ति विजानतोऽयम्।।

14

अतो निर्भयोऽस्मीति दृढप्रबोधात्, दृढामतिर्मे ननुलेखनेऽपि।
त्यक्ष्ये च नाहं परमं सुदुर्लभं, तत्तत्स्वरूपं परमेश्वरस्य।।

15

ज्ञातं श्रुतं यत् पठितंच यन्मया, यत्तत्कृपातोऽप्यनुभूतिमागतम्।
यथा समायाति तथा लिखामि, न तन्मदीयं भवदीयमेव।।

16

न संवृणोतु प्रभवामि लोभं, श्री रामलालस्य यशासिकीर्त्तने।
अतो यतेऽहं निजमन्दमत्या, समग्रतोनैव यदग्रलोभे।।

17

जानाति कः कोऽस्ति सुपात्रताकृतः, संस्कार युक्तः परपुण्यभाक्च।
वृणुते यमीशः प्रददाति सन्निधिं, निश्चप्रचः सः सत्पात्र एव॥

18

प्रभुर्यदा धाम निजं विहाय, नेपाल तो वा शिखराद् हिमाद्रेः।
करुणापरः स्वांस्तु जनान् सुपात्रान्, सन्तारणाय प्रकटीबभूव॥

19

सर्वं विजानन्नपिलीलया धृतं, वपुः शरीरी भुवि संचचार।
व्यवहारतः प्राकृतवत् समाचरन्, सवाई ग्रामे प्रभुराविवेश॥

20

स्वयोगमायां समाश्रयत् सः, यदा कदा मायिकमाचचार।
योगं प्रशिक्षन्विविधांस्तु रोगान्, उपाचचार च चमत्चकार॥

21

जना असंख्याः शरणं प्रपन्नाः, ये सामयास्तेऽपि निरामयाः कृताः।
यशः प्रभोर्नित्यनिरन्तरं तदा, प्रवृद्धिं प्रसिद्धिञ्च निसर्गतोगतम्॥

22

प्रलुप्तप्रायं वरदानरूपम्, जनेषु योगं वितरन् प्रचारयन्।
मनसा स्वकेनैव नवीन योगं, उपाहृतं ''जीवन तत्व साधनम्''॥

23

अहो! वस्तुतो येऽपि हि केऽपि योगिनः, निरन्तरं ध्यान परायणाः स्युः।
तेषां निमित्तं परमोपयोगितत्, आविष्कृतं ''जीवन तत्व साधनम्''॥

24

विभूतिमतः परमास्तपस्विनः, जानन्ति ये तत्वतः सर्वसारम्।
तेषां कृते किं करणीयमस्ति, न प्रापणीयं न च दुर्लभं क्वचित्॥

25

तथापि नैष्कर्म्यमनाश्रितास्ते, कुर्वन्ति लोकाय यदस्ति श्रेयः।
यद्यत् प्रमीणीक्रियते महद्भिः, प्रामाणिकं तन्मनुते हि विश्वम्॥

26

अस्माकं प्रभुरे व साक्षात् हरः ब्रह्मा विष्णुश्चापि सः,
अस्माकं यो योगिराड् गुरुवरस्तस्यापि साक्षाद् गुरुः।
अस्माकं गुरुरेव सर्वमखिलं विश्वं वशं कारयेत्,

तान् गुरुवर्यान् प्रति किमधिक कथ्यं च शेषायते।।

27

वैराग्यमूर्तिः करुणावतारः, योगप्रचाराय धृतावतारः।
विभूतिमान् दीप्तप्रदप्तिः कीर्त्तिमान्, लीलार्थमिव योगमयो वपुष्मान्।।

28

स्वल्पायुषि धाम विहाय नून, बभ्राम काश्यां कुरुक्षेत्रके च।
ततो नीलकण्ठेऽपि तताप भूरि, हरिद्वार क्षेत्रे स उवास नः प्रभुः।।

29

इत्थं व्यतीयाय सुदीर्घकाल, पुनरागमत् स निजधाम्नि नः प्रभुः।
स तत्रतश्चागमत् सवाईम पवित्रकरणाय स्वकपादरेणुभिः।।

30

यदा जनास्तत्र कृतार्थताञ्गता, प्रभोरीशवत्ता प्रभुता च मेनिरे।
तदा प्रभुर्धामनि च स्वकीये, गन्तु समीहां प्रकटीचकार।।

31

जनास्ततः प्रेमपरायणाः प्रभोः, मन्तु यदा नैव समुद्ययुस्तदा।
दर्यां समाधिस्थमवेक्ष्य ते प्रभुं गुहाकपाटन्तु रुरोध बाह्यतः।।

32

प्रभुः समाधिक्षत एव सर्व, जानन्नपि नैव प्रतीचकार।
निर्बन्धनः सः कथमेति बन्धनम्, बाधा विहीनः, कथमेति बाधाम्।।

33

निशीथकालात्य ये च रात्रौ, ब्राह्मे मुहूर्त्ते स प्रभुर्गुहातः।
सिद्धेश्वरः सिद्धदशानुकूलः, निष्क्रम्य गमनं गगनाच्चकार।।

34

प्रभातकाले तु यदा गुहायाः अपावृणोद् द्वारमनावृतं तत्।
नो ददृशुस्ते तु यदा प्रभु च, सविस्मयाश्चाप्यति दुःखिताः स्म।।

35

चमत्कृत तत् प्रभुणा स्वयं कृतं, कृतेऽज्ञानिनां बोधनमात्ररुपम्।
किमत्र चित्रं प्रभवे तदस्ति, किं बन्धमुररी-कुरुते प्रभुर्यः।।

36

गण्डालमजो भागवन्त्यारच गूत्वा, सुतः स्वनाम्ना प्रथयाञ्चकार।
दिन, तिथिः सा च सित च पक्षे, श्रीरामरुपेऽवततार नः प्रभुः।।

37

स रामचन्द्रः रघुवंशभूषणः, परमेश एषोऽपि स रामलालः।
स सूर्यवंशस्य कुलावतंसः, सारस्वतानां कुलभास्करोऽयम्।।

38

पञ्चाम्बुप्रान्तं सुयशः प्रयातु, ख्यातं च विख्यातमतीव कर्तुम्।
योगीश्वरो योगमयं वपुर्दधत्, उद्धारयामास च नैकपतितान्।।

39

प्रसिद्धमस्ति प्रभू रामलालः,पतितां च 'रामरतीति' नाम्नीम्।
उद्धारयामास स्वकेन तेजसा, नीता प्रणीता शुभयोगमार्गे।।

40

विनिन्द्य चरिता पतिता तथाऽधमा, दुःसङ्गता प्राप्य विमूढमतिका।
यत्तेजसा यापि गता समाधौ, भ्रष्टापि सा सत्पथिका बभूव।।

41

एवं प्रपठिताश्च श्रुतास्तु तावत्, गुरोः सकाशात् बहवः प्रसङ्गाः।
युवा बालरूपोऽपि सदैकनिष्ठः, जातः स एव ''हरिहरानन्द'' इति सिद्धयोगी।।

42

एवं ''मुलखराज'' इति नामधृक् युवा, आस्तिक्य भावेन विहीन एव।
प्रभोर्दिव्यभावात् गतिमीदृशींगतः, अभून्महिष्ठः स च योगिराट् इति।।

43

अद्यापि तत्कीर्त्तिरतीव धवला, प्रकाशते यत्र कुतोऽपि सः गतः।
शिष्याः प्रशिष्या अधुनापि तद्यशः गायन्ति भक्त्या च कृतार्थताङ्गताः।।

44

अन्ये च शिष्या बहवो बभूवुः यैरुच्चता योगपथेषु लब्धा।
तेषां हिमव्येऽप्यमवदेक ख्यातो, ब्रह्मचारीति गोपाल–आनन्द इति च।।

45

यथाथतो ''ब्रह्मचारीति'' शब्दं, अभूषयत् स्वैस्तु क्रिया कलापैः।
गुरुपदिष्टं व्यदधात् समस्तं, स सिद्धयोगीति यथार्थतोऽभूत्।।

(क्रमशः)

प्राण तत्व क्या है?

डा. जे. पी. शर्मा
पौंटा साहिब, सिरमौर (हि.प्र.)

हमारा शरीर पाँच तत्व से मिलकर बना है। यह तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु है। इन पाँचों तत्वों में वायु प्रधान रूप से विद्यमान है, इसी के कारण हमारा जीवन चलता है। श्वासों के आदान–प्रदान में वायु ही अन्दर जाती और बाहर निकलती है जिसे हम प्राण कहते हैं। हमारा पूर्ण जीवन प्रणों पर ही टिका है। जब तक प्राण हैं, तो हम जीवित हैं तथा प्राण निकलते ही हम मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। धर्मशास्त्रों में इसी प्राण को ब्रह्म कहा है। प्राण हमारे शरीर के कण–कण में व्याप्त हैं। शरीरस्थ इन्द्रियाँ तो विश्राम कर लेती हैं परन्तु प्राण चौबीसों घंटे चलता रहता है। '**चैरेवेति–चैरेवेति**' ही प्राणों का मूल मंत्र है। जब तक अविरल प्राण शरीर में चलते हैं शरीरधारी की आयु बनी रहती है तथा प्राणों के बन्द होते ही आयु समाप्त हो जाती है तथा शरीर काम करना बन्द कर देता है। अतः जीवन में शरीर की नहीं, केवल प्राणों की महत्ता है। जब तक शरीर में प्राण हैं तो शरीर शक्तिमयी है, प्राणशक्ति निकल जाने पर शरीर, शव कहलाता है। प्राण शक्ति के बल से ही शरीरस्थ पित्त, कफ, रक्त तथा मल एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाता है तथा शरीर की अन्य क्रियायें संचालित होती हैं। अतः शरीर में तथा अखिल ब्रह्माण्ड में प्राण सबसे शक्तिशाली तथा उपयोगी जीवन तत्व है, इसी कारण इसे प्राण तत्व कहना सर्वथा न्यायोचित है। सामान्यतः शरीर में पाँच प्रकार के प्राण पाये जाते हैं जैसे– प्राण, अपान, उदान,समान तथा व्यान आदि। इसके अतिरिक्त 'देवदत्त, नाग, कृकल, कूर्म तथा धनंजय' नामक उपप्राण होते हैं जिनसे छींकना, पलक झपकाना, झमाई लेना, खुजलाना, हिचकी लेना आदि क्रियायें संचालित रहा करती हैं। श्रीमद्भगवतगीता के महात्म में कहा गया है कि प्राणायाम की साधना करने वाले के इस लोक के तो क्या पूर्व जन्मों तक के किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं, यही कारण है, हर प्राणी प्राणायाम करने को उत्सुक बना हुआ है। परंतु प्राणायाम क्या है? यह भलीभांति समझ लेना आवश्यक है। प्राणायाम अभ्यास से पूर्व 'प्राण' का सही अर्थ समझना अति आवश्यक है जिससे प्राणायाम करने में कठिनाई नहीं होगी। '**कुत एव प्राणो जायते**' अर्थात् प्राण कहाँ से पैदा होता है। उत्तर– '**आत्मन एव प्राणो जायते**' अर्थात् आत्मा से प्राण उत्पन्न होता है। यही कारण है कि प्राणों की उत्पत्ति के बारे में गीता, 4/27 में कहा गया है। यथा–

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयम योगाग्नो जुह्वति ज्ञानदीपिते।।

अर्थात् योगीजन इन्द्रियों की सारी क्रियाओं को और प्राणों की समस्त क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित आत्मसंयम योगरूप अग्नि में हवन किया करते हैं। प्राणों की अदृश्य शक्ति हमारे शरीर तथा ब्रह्माण्ड मे सर्वत्र फैली हुई है। प्राण ऊर्जा से ही हम बोलते, खाते, पीते, सुनते, चलते तथा सोते हैं। प्राणायाम परायण के चहरे पर प्राण ऊर्जा 'ओज' या 'औरा' प्रभामण्डल के रूप में दिखाई देती है। प्राणों के बारे में कहा गया है कि सबसे प्रथम प्रजापति ने 'रयि एवं प्राण' को उत्पन्न किया। सूर्य ही प्राण है तथा चन्द्रमा ही 'रयि' अर्थात भोग्यान्न है। मूर्त तथा अमूर्त पदार्थ प्राण रूपी तेज के लक्ष्य बताये गये हैं। यथा

स एष वैश्वानरो विश्वरूप: प्राणोऽग्निरुदयते। अर्थात् वह प्राण ही सर्वगत अग्निरूप उदय होता है। मनुष्य अपने तपोबल से, ब्रह्मचर्य से, श्रद्धा से तथा योगविद्या से अपनी आत्मा को खोजकर सूर्य लोक को प्राप्त हो जाते हैं, उन्हें पुर्जन्म धारण नही करना पड़ता, क्योंकि सूर्य नारायण ही प्राणों की शरण–स्थली है। सारे जगत चराचर को सूर्य देव ही अपनी रश्मियों द्वारा प्राण उत्सर्जित करते रहे हैं। अत: प्राण ही सूर्य है अथवा सूर्य ही प्राण है। सूर्य देव जब अपने रूप को समेट लेते हैं तब प्राणी रूप आदि गुणों से हीन हो जाता है क्योंकि प्राण ही शरीर बन्धन में मुख्य है। शरीर की इन्द्रियों पर अलग–अलग देवों का शासन रहता है, अत: इन्द्रियाँ उनके वश मे रहती हैं। कहते हैं, सभी अभिमानी देवों ने अपनी –अपनी इन्द्रियों से पूछा कि हममें सर्वश्रेष्ठ कौन है? पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि, वाणी, चक्षु, श्रोत्र तथा मन सभी ने ही अपनी–अपनी महिमा का बखान किया तथा कहा कि शरीर को हम ही धारण किये हुए हैं। उनकी अभिमानी बातों को सुनकर 'प्राण' ने कहा– **''मा मोहमापद्यथ।''** अर्थात् अरे मूर्खो! अज्ञान को प्राप्त मत हो, मैं ही इस आत्मा के लिए पाँच रूपो में विभाजित होकर शरीर को धारण कर रहा हूँ। इस पर देवताओं को विश्वास नहीं हुआ, तब प्राण शरीर को छोड़ने लगा। प्राण के शरीर छोड़ने से पहले ही शरीर के सभी अंग शिथिल व निष्क्रिय होने लगे, तब देवों ने 'प्राण' से स्थिर रहने की प्रार्थना की तब शरीर की सारी इन्द्रियाँ सकुशल पूर्ववत कार्य करने लगी। प्राणों का कार्य ठीक वैसा ही है, जैसे मधुमक्खियों के छत्ते से रानी मक्खी उड़ जाती है, उसके साथ ही छत्ते की सब मक्खियाँ भी छत्ता खाली कर जाती हैं। प्राणों की महिमा हमारे ऋषियों ने मुक्त कंठ से गायी है–

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्योमघवानेष वायु: एष पृथिवी रयिर्देव: सदसच्चामृतं च यत।

अर्थात् यही प्राण अग्निरूप से तपता है, सूर्य, मेघ, इन्द्र, वायु, पृथ्वी, रयि (चन्द्रमा) यही है। सत् एवं असत् भी यही है तथा यही अमृत है। अत: प्राण में सत् व असत् दोनों का अस्तित्व है। प्राण अनुपम है। जैसे रथ के पहिये में 'अरे' लगे रहते हैं, साईकिल के पहिये मे तानें लगी रहती हैं, उसी प्रकार प्राण में ऋक, यजु, साम, यज्ञ, क्षत्र एवं ब्रह्म आदि हैं। प्राण ही बच्चे के रूप मे माता के गर्भ में पलता है, तथा उत्पन्न होता है तथा अन्य प्राणों में स्थित रहता

है। देवों के बलि प्राण ही पहुंचाता है, पितरों की तृप्ति श्राद्ध रूप में प्राण ही करता है। अतः प्राण इन्द्र है, तेजस्वी होने के कारण प्राण ही रूद्र है, प्राण ही रक्षक है, यही प्राण सूर्य रूप में आकाश में फैले रहते है, यही नक्षत्रों के पति है। प्राण ही वर्षा के रूप में पृथ्वी को तृप्त करते है जिससे खाद्यान्न पैदा होते हैं तथा खाद्यान्नों से प्राणीमात्र का भरण–पोषण होता है। प्राण केवल स्वतः शुद्ध है इससे अधिक शुद्ध कोई नहीं है। यथा–

प्राणस्येद वशो सर्व त्रिदिये यत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहिनः।।

अर्थात् सब प्राण के वश में हैं तथा स्वर्ग में जो कुछ भी है, वह भी प्राण के वश में है अतः हे प्राण! माता के समान पुत्रों का पालन–पोषण कर। हमें लक्ष्मी, सरस्वती अथवा श्री एवं प्रज्ञा को प्रदान कर। प्राण हमारे सारे शरीर पर शासन करता है– **"मुखनासिकाभ्यां प्राणः'** मुंह तथा नासिका में प्राणवायु रहती है। इस प्राण को सप्तर्षि कहा गया है, क्योंकि दो कान, दो नेत्र, दो नासिकारन्ध्र तथा एक मुख– ये सात प्राण के अग्निस्वरूप की ज्योतियाँ कही जाती हैं।

मृत्यु के समय मानव जिस प्रकार के प्राण का चिन्तन करता है, उस चिन्तन के विषय प्राण को ही प्राप्त करता है, जो प्राण को समझ लेता है, वह अजर–अमर हो जाता है। मनुष्य शरीर पंचकोशीय है, अतः प्राण से अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमयकोष तथा आनन्दमय कोश शुद्ध रहते हैं। आहार रूप में भोजन करते हैं, साथ में साग, भाजी, दही, चटनी इत्यादि अन्नमय कोश में पहुंचते हैं। शरीर के अन्दर भोजन सामग्री का विधिवत प्राणों की सहायता से पाचन होता है। जिससे तरह–तरह के रस, हार्मोन, विटामिन, प्रोटीन, लवण इत्यादि बनकर शरीर का पोषण करते हैं, इन्हीं से रक्त बनकर सारे शरीर में फैलता है। रक्त के साथ ही प्राण शरीर में विचरते हैं। अतः प्रतिदिन भोजन के द्वारा नये प्राण शरीर में बनते रहते हैं तथा प्रतिदिन प्राण क्षय होते हैं, परंतु शरीर कभी भी प्राणशून्य नहीं रहता क्योंकि प्राणशून्यता ही मृत्यु है। प्राण आत्मा का भोजन है, प्राण है तो आत्मा है। प्राणों के निकलते ही आत्मा, सूक्ष्म शरीर, मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को साथ लेकर शरीर से बाहर निकल जाती है। शरीर में प्राणों की एक निश्चित संख्या होती है, श्वास–प्रश्वास रूप में प्राण... संख्या पूर्ण होते ही, मृत्यु हो जाती है। यही कारण है कि प्राणों को आराम देने से आयु बढ़ जाती है। प्राण को आयाम अथवा आराम देना ही 'प्राणायाम' कहा गया है। इसीलिए हर प्राणी, मनुष्यप्राणायाम् करता दिखाई दे रहा है। अगर निश्चित आयु होती तो मनुष्य कभी प्राणायाम करने की सोचता भी नहीं। अर्थ सहित प्रणव (ॐ) का जप श्वास–प्रश्वास या गुरु मंत्र का श्वास–प्रश्वास में जप करने से प्राणायाम सिद्ध हो जाता है। योग सूत्र में लिखा है– **'तस्य वाचकः प्रणवः' – तज्जपस्तदर्थभावनम्'** इत्यादि।

अतः सर्व सुगम प्राणायाम प्रणव जप से होता है। निश्चित संख्या में 'पूरक' करें,

उससे दो गुना जपता हुआ 'कुम्भक' करे तथा चार गुना जपते हुए शनैः शनैः 'रेचन' करे। इसी प्रकार उत्तरोत्तर अभ्यास से यम, नियम, आसन, धारणा, ध्यान स्वतः हो सिद्ध हो जाते है तथा समाधि लगने लगती है। जितेन्द्रिय रहकर प्राणी प्राणायाम से 'केवल्य' लाभ प्राप्त कर लेता है। प्राणपूजा अपनी आत्मा की पूजा है, अतः परमात्मा एवं चेतन की पूजा है, इसमें मन लगाने वाला संसार सागर से मुक्त हो जाता है। प्राणवायु, पंचमहावायुओं में मुख्य है, अतः मुक्ति का कारण है। कहा गया है– **मौनी प्राणायामत्रयं कुर्यात्** – अर्थात् मौन रहकर तीन प्राणायाम करे। प्राणायाम करने के लिए सभी स्वतंत्र हैं कोई भी प्राणी इस प्राण गंगा में स्नान कर सकता है। इसके लिए किसी ऋतु विशेष की भी आवश्यकता नहीं है। सात्विकता तथा श्रद्धा ही प्राणायाम की कुंजी है। शरीर शुद्धि के बाद साफ जगह, हवादार, प्रकाश युक्त स्थान में पद्मासन अथवा सुखासन में बैठकर प्राणायाम करना ठीक रहता है। इसीलिए कहा गया है:–

तन डिढ मन डिढ बचन डिढ और आसन डिढ होय।
गुरु कहे सुण चेलक्या मरे तो सही पिण बूढोनी होय।।

प्राणायाम के महत्व को समझाते हुए पिप्पलाद मुनि ने भरद्वाज पुत्र सुकेशा से कहा कि ये प्राण आदि जिससे उत्पन्न हुए हैं, वह इसी शरीर में अंगुष्ठमात्र होकर हत्कमल में निवास करता है। सृष्टि के बारे में उसने सोचा कि मैं किसके आविर्भाव पर अपना आविर्भाव करूंगा एवं किस स्थिति में करूंगा, क्योंकि सबका आश्रय तो मैं हूँ, मेरा आश्रय क्या होगा? तब उसने 'प्राण' की उत्पत्ति की। प्राण से श्रद्धा पैदा हुई। वायु, आकाश, जल, तेज, पृथ्वी, दसों इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तप, कर्म, मंत्र तथा लोक प्रसिद्ध नामादि बनाये। इन सब में व्याप्त प्राण, उसी महाप्राण के आश्रित है, जैसे नदियाँ समुद्र में मिलकर अपने अस्तित्व को मिटा देती है तथा केवल समुद्र नाम रह जाता है, ठीक उसी प्रकार प्राणी मुक्त होकर महाप्राण परायण, परमात्मा में मिलकर अपना अस्तित्व मिटा देता है, इसी को जीवात्मा का परमात्मा में मिलन कहा जाता है। प्राणायाम में प्रणव का जो स्थान है, वह किसी अन्य अक्षर या बीजाक्षर को नहीं मिला। प्रणव की– 'ॐ' की तीन मात्रायें हैं। यह अ,उ,म अथवा 'ओउम' है। जो मनुष्य प्रणव की किसी भी एक मात्रा का ध्यान करता है, मृत्यु उपरान्त उसे मनुष्य योनि प्राप्त होती है। पूर्व संस्कारों वश ऐसा प्राणी जन्म लेकर 'प्राणायाम परम' बन जाता है। यदि कोई दो मात्रा वाले प्रणव ('अ','उ') से मन में प्रणव को धारण करता है, तो वह चन्द्रलोक को प्राप्त होता है। वहाँ ऐश्वर्य भोग करके पुण्य क्षीण होने पर पुनः पृथ्वी पर जन्म लेकर कैवल्य पद प्राप्त कर लेता है। परन्तु जो प्रणव की तीनों मात्राओं ''ॐ'' इस अक्षर से उस परमात्मा के प्राणायाम परायण होकर उपासना करता है, वह तेज स्वरूप सूर्य में निवास करता है। सर्प जैसे कैंचुली (त्वचा) से मुक्त हो जाता है, इसी प्रकार प्राणी पाप से मुक्त हो जाता है एवं सामवेद के मन्त्रों से ब्रह्मलोक प्राप्त कर लेता है। अतः प्रणव जपने वाला जरा (बुढ़ापा) तथा

मृत्यु के भय से छूट जाता है।

प्राण के बल पर सारा ब्रह्माण्ड तथा मनुष्य पिण्ड चलता रहता है। सृष्टि में हर जगह परोक्ष–अपरोक्ष रूप से प्राण ही समाया हुआ है। सूर्य नारायण प्रतिदिन अपनी रश्मियों से प्राण वर्षा करते रहते हैं, जिस दिन बादलों के कारण नहीं निकलते तो सब प्राणीमात्र उनके दर्शन के लिए अकुला जाते हैं। श्री हनुमान जी ने बचपन में सूर्य को फल समझकर अपने मुँह में रख लिया था, उससे सारे संसार में अँधेरा छा गया था तथा सभी जीवधारी, पशु, पक्षी, चर, चराचर व्याकुल हो उठे थे। तब सभी देवताओं ने मुक्त कंठ से हनुमान जी से प्रार्थना की कि सूर्य भगवान को मुँह से निकाल दें, सारा जगत त्राहि–त्राहि कर रहा है–

'बाल समय रवि भक्ष लियो, तब तीनहुँ लोक भयो अँधियारो'

यह सब प्राण के कारण हुआ। प्राणशक्ति के कारण ही श्री हनुमान जी ने सूर्य को मुँह में रखा तथा जगत को प्राण मिले, इसी कारण उनसे सूर्य को मुख से बाहर निकालने की प्रार्थना की गई। शरीर में तथा सृष्टि में प्राण सन्तुलन आवश्यक है। शरीर में प्राण की कमी से कमजोरी आ जाती है, अतः प्राण का सर्वत्र राज्य है। माता के गर्भ से बच्चा प्राण शक्ति से ही बाहर निकलता है। प्राणी आहार के बिना कई दिनों तक जीवित रह सकता है, परंतु प्राण के बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकता। प्राण गयात्मक है। इस प्राण की गयात्मकता सदागतिक वायु में पाई जाती है। अतः प्रकृति तथा शरीर में प्राणतत्व सर्वत्र व्याप्त है।

शरीर में दस द्वार होते हैं, वहाँ तक प्राण गति करते रहते हैं। मृत्यु के समय यही 'प्राण' इन्हीं द्वारों से बाहर निकल जाते हैं। शरीर में प्राण होने से मनुष्य मात्र को प्राणी कहकर पुकारते हैं। अतः प्राण के बिना न तो शरीर बनता है और न ही ब्रह्माण्ड, क्योंकि प्राणी से ही ब्रह्माण्ड सृजन हुआ। अतः प्राणतत्व महान है। प्राण है तो प्राणी है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड है तो पिण्ड (शरीर) है। सर्वत्र प्राण ही तो व्याप्त है। यही प्राणतत्व है।

ooo

मनस्तापं न कुर्वीत आपदां प्राप्य।

गरूड़पुराण 111/23

विपदा आने पर मन को दुखी नहीं करना चाहिये यदि हमें यह ज्ञान हो जाये कि यह विपदा स्वयं टलने वाली है। धीरे–धीरे उत्तम समय आने वाला है। हम प्रकाश की ओर चल रहे है। हमारी समस्याऐं अपने–आप हल होने वाली हैं, तो हमारी बहुत सी पीड़ायें स्वयं दूर हो जायेंगी। समय की गति के साथ अज्ञान, मोह और विषम कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

असीम की ओर

राजेश कुमार सिंह, बलिया

यूँ तो आकाश को मैं प्रत्येक दिन इन खुली आँखों से देखता हूँ, मगर एक दिन स्थिर भाव से मेरे मन ने प्रश्न किया, क्या इन आँखों से इस अनंत को देख सकते हैं? नहीं, जवाब भी मन ने ही दिया, ये उसका अंश है और अंश से ही अनंत का बोध होता है।

मन का स्वभाव तर्क युक्त होता है, तर्क प्रश्न करता है। बूँद समुद्र बन जाती है और देखा जाये तो समुद्र एक बूँद के सिवाय कुछ भी नहीं है। प्रश्नों के पीछे चलते रहने से अनंत तक बढ़ सकते हैं। मन के उसके तर्क और विवेचन से अलग कर कुछ देर के लिए रहने का जब हम प्रयत्न करते हैं तब लगता है कि अंश सम्पूर्ण के बराबर है, वहां कोई सीमा नहीं है।

मेरा मन जो समझ सकता है हो सकता है वो दिव्य हो मगर है तो एक हिस्सा ही, अगर उस मन को मिटा दें तो भ्रम नहीं रहता। मन चंचल है, पहले तो ये बेतुका लगता है कि शाश्वत के साथ इस छोटे मन का कैसे सम्पर्क बन सकता है। लेकिन गौर से देखें यह मन वस्तुतः छोटा नहीं है। यह छोटा अगर दिखाई पड़ता है तो अपने कारण। सीमाएं हमने बनाई हैं जो मिथ्या है। यह छोटा मन अनंत से सम्बन्ध रखता है, यह उसका अपना हिस्सा है। असीम को हम विभक्त नहीं कर सकते। आकाश भारत वर्ष के ऊपर का हो या अमेरिका के ऊपर का, वह एक है। आकाश कभी भारतीय या अमेरिकी नहीं है। उसका कहीं आरम्भ नहीं है, कहीं अंत नहीं है। वह एक अविभक्त विस्तार है। उसी तरह मेरी आत्मा भी असीम का अंश है, हम अगर सीमित दिखते हैं तो ये भ्रम है एक धारणा है, वास्तविकता नहीं। हम जो विचारते हैं, हो जाते हैं, हमारी धारणा ही हमें सीमा में बद्ध कर देती है। सीमित होने का दृष्टिकोण अगर हम गिरा दें तो हम असीम हो जाते हैं।

योग पर विद्वानों के वचनों को सुनें हैं, वे मन की तरंगों को रोकने की बातें कहते हैं, मनोदशा के ढांचे को तोड़ देने को कहते हैं। बिना सीमाओं को तोड़े पार कैसे जाया जा सकता है। ये सीमाएं स्वरचित हैं ये मात्र विचार है। जब मन में विचार नहीं तो हम नहीं और जब हम नहीं तो सीमा नहीं।

> ज्ञानी कहते हैं–संसार का त्याग करना होगा। इसका अर्थ यह नहीं कि स्त्री–पुत्र–परिजन को नदी में बहाकर वन में चले जाना होगा। सच्चे त्याग का अर्थ है – संसार में अनासक्त होकर रहना। –स्वामी विवेकानन्द

—त्रिजुगी नरायन मिश्र—

ध्यान में लवलीन उसमें रहो!

आत्मा है ब्रह्म परमेश्वर तुम्हारी,
ध्यान मे लवलीन नित उस मे रहो
मृत्यु निह शेष होगी,
प्राण के अस्तित्व में।
अज्ञान भी मिट जायेगा,
अस्तित्व होगा ज्ञान का।
है वहाँ आनन्द ही आनन्द,
निरभय हो सकोगे शोक से।
आत्मा है ब्रह्म परमेश्वर तुम्हारी,
ध्यान में लवलीन नित उसमें रहो।
अमरत्व मिलेगा भीतर झांको
सांसारिक भोग भरे बाहर,
मन इन्द्रियों का है दोष यही,
है भाग रहे बाहर बाहर।
अन्तर मे स्थित स्व: तेरा
आत्मा का साक्षात्कार करो।
आत्मा है ब्रह्म परमेश्वर तुम्हारी
ध्यान में लवलीन नित उसमें रहो
प्रभु तुम्हारे ह्रदय में है,
वही उन का धाम है।
जो वे है हम है वही,
गुरु देव का संदेश है।
नित्य बैठो ध्यान में
ढूढ लो प्रभु को ह्रदय में
आत्मा है ब्रह्म परमेश्वर तुम्हारी
ध्यान में लवलीन नित उसमें रहो

प्रभु की शरण

एक उपलब्धि जीवन की है यह बड़ी,
प्रभु शरण पा गया शान्त मन हो गया।।
चाहे जैसा भी हूँ अंस हूँ ब्रम्ह का,
मोक्ष के वास्ते ही सृजन है हुआ।
कर्म संचित हुये जन्म जन्मो से जो,
भोगता भोगता आप तक आ गया।
एक उपलब्धि जीवन की है यह बड़ी,
प्रभु शरण पा गया शान्त मन हो गया।
भक्ति को योग को बस पढ़ा ही पढ़ा,
पंथ मिलते रहे तर्क सब के सुने।
आस्था न जमी मन भटकता रहा,
मन भटकते हुए द्वार पर आ गया।
एक उपलब्धि जीवन की है यह बड़ी,
प्रभु शरण पा गया शान्त मन हो गया।
क्षीण काया हुई सक्ति सारी गई,
योग्य अब है नही साधना के लिए,
आसरा मिल गया प्राण निर्भय हुये,
मौज मस्ती से रहना हमें आ गया।
एक उपलब्धि जीवन की है यह बड़ी,
प्रभु शरण पा गया शान्त मन हो गया।
जिन्दगी कट गई शेष थोड़ी रही,
दर्द सहने की सक्ति सहज आ गई
हो कठिन ही मिले चाहे जितनी भी ये
आप को पा गया हौसला बढ़ गया
एक उपलब्धि जीवन की है यह बड़ी,
प्रभु शरण पा गया शान्त मन हो गया।

प्रतिपल सहायक श्री गुरुदेव

केशवदेव उपाध्याय

आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज अपने यौगिक प्रवचनों में अपने मुखारबिन्दु से यह बात बार-बार दुहराते रहे कि चलते-फिरते, उठते-बैठते सदैव अपने गुरुमत्र का जप किया करो, वे करुणासागर नैपालवासी कल्याणघन श्री प्रभु जी (हमारे, आपके दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज) सदैव तुम्हारी मनोकामना पूर्ण किया करेंगे। यह तथ्य उस समय हमारी समझ में नहीं आ रहा था। श्री गुरुदेव भगवान की अहैतुकी कृपा से अब इसका ज्ञान हो गया है। सचमुच जगत नियन्ता श्री प्रभु जी सदैव अपने बच्चों के साथ रहते हैं एवं उनके संकट के समय अवश्य-अवश्य सहायता करते हैं। वाराणसी मण्डल के हमारे एक गुरुभाई का नाम श्री एन.आर. यादव है। उनकी धर्म परायणा पत्नी का नाम श्री मती शारदा देवी है।

वाराणसी मण्डल के निवासी हमारे गुरुभाई श्री एन.आर. यादव जी बिजली विभाग के अधिकारी के पद से करीब चार-पाँच वर्ष पूर्व सेवा निवृत्त हुए हैं। अपनी धर्मपरायण अर्धांगिनी श्रीमती शारदा देवी के साथ झांसी मण्डल द्वारा मनाये जाने वाले यौगिक प्रचार कार्यक्रम जो दिनांक 13.11.07 से 17.11.07 तक था में भाग लेने गये थे। यह कार्यक्रम श्री लक्ष्मीबाई व्यायाम मन्दिर झांसी के पैवेलियन हाल में आयोजित था। श्री एन.आर. भाई साहब झांसी में अपने एक रिश्तेदार के यहां रुके थे एवं वहां से ही आकर पूरे कार्यक्रम में भाग लेते थे एवं रात्रि इन्होंने पूरे कार्यक्रम में सम्मिलित रहकर आध्यात्मिक लाभ उठाया एवं कार्यक्रम के समापन के बाद ये अपने रिश्तेदार के यहां आ गये। इनके इस रिश्तेदार का नाम श्री उमारतन यादव है इनकी धर्मपरायण पत्नि का नाम श्रीमती सुधा है तथा इन्हें एक छोटी बच्ची है जिसका नाम गौरी है। जिसकी उम्र लगभग पांच साल की है। श्री उमारतन यादव जी झांसी के किसी बी.के. डिग्री कॉलेज में प्राध्यापक है, तथा इनकी धर्मपत्नी भी पोस्ट ग्रेजुएट की पढ़ाई से युक्त गृहकार्य दक्ष महिला हैं।

श्री एन.आर. यादव जी का एक भतीजा (भाई का लड़का) श्री सुधीर कुमार यादव है जो पी.सी.एस. है और इस समय मध्यप्रदेश के सागर शहर में किसी अधिकारी के पद पर है। श्री सुधीर कुमार ने जब श्री एन.आर. यादव के झांसी जाने का एवं वहां के संगीतमय यौगिक सत्संग में सम्मिलित होने की बात श्री उमारतन यादव से बतलायी। ईश्वर कृपा से यह जोड़ा (श्री उमारतन यादव एवं श्रीमती सुधा रानी) भी आध्यात्मिक प्रवृत्ति का है। उसे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई एवं ये दम्पति वाराणसी से झांसी जाने वाली बुन्देलखण्ड एक्सप्रेस के झांसी स्टेशन पहुंचने के पूर्व ही ट्रेन आने वाले प्लेटफार्म पर खड़े होकर हमारे गुरुभाई बहन

दम्पति का इन्तजार कर रहे थे। बुन्देलखण्ड एक्सप्रेस के झांसी प्लेटफार्म पर खड़ी होने पर उचित अभिवादन के बाद श्री उमारतन यादव को अपनी गाड़ी से लेकर अपने घर गये, उनको उचित प्रकार आरामदायक स्थिति में ठहराया एवं उनके स्नानादि से निवृत्त होने के बाद, सबके साथ झांसी के यौगिक प्रचार कार्यक्रम स्थल पहुंच गये, जहाँ प्रात: कालीन आरती होने वाली थी उसके बाद उस दिन के सम्पूर्ण कार्यक्रम में हमारे गुरुभाई बहन उपस्थित रहे एवं रात्रि निवास करने हेतु श्री उमारतन जी उन्हें अपने घर ले गये। तेरह नवम्बर से सत्रह नवम्बर तक इसी प्रकार कार्यक्रम चलता रहा। अर्थात् श्री उमारतन यादव जी अपनी धर्मपरायणा पत्नी को हमारे गुरुभाई बहन की दम्पति के कार्यक्रम स्थल पर छोड़ देते एवं सायं कालीन आरती–सत्संग आदि के बाद इन लोगों को अपने घर पर रात्रि विश्राम के लिए लेकर चले जाते। अट्ठारह नवम्बर को भाई जी अपने भतीजे श्री सुधीर कुमार के यहाँ जाने का प्रोग्राम बनाये। झांसी रेलवे लाइन के मेन रूट पर स्थित है अत: इन्हें झांसी से बीना एवं बीना से सागर की यात्रा करनी थी। इस दिन अर्थात् अट्ठारह नवम्बर को रविवार था अत: भोजनोपरान्त श्री उमारतन जी अपने परिवार के साथ हमारे गुरुभाई दम्पति को छोड़ने एवं रेलगाड़ी पर बैठाने झांसी रेलवे स्टेशन आये। उस समय उस तरफ जाने वाली छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस ट्रेन के प्लेटफार्म न. चार पर आने की सूचना का एनाउन्समेंट रेल विभाग द्वारा किया जा रहा था। टिकट खिड़की पर लम्बी लाईन लगी थी, अत: श्री उमारतन जी ने अपनी धर्मपरायणा अर्धांगिनी श्री सुधा रानी को रुपये देते हुए कहा, "दो टिकट बीना का ले आओ।" स्वयं अपनी प्यारी बच्ची गौरी के साथ किनारे खड़े हो गये एवं गुरुभाई दम्पति से विनम्रता से कहा कि आप लोग प्लेटफार्म नम्बर चार पर चलिये हम लोग टिकट लेकर आ रहे हैं। हमारे गुरुभाई जी अपनी धर्मपत्नी के साथ सीढ़ियों से चढ़कर प्लेटफार्म नम्बर चार पर पहुंच गये। ट्रेन के प्लेटफार्म नम्बर चार पर पहुंचने के समय ही सुधा रानी को टिकट भी मिल गया। ये लोग टिकट लेकर सीढ़ियों द्वारा प्लेटफार्म नम्बर चार पर पहुंचने ही वाले थे कि ट्रेन अपनी अगली यात्रा के लिए चल दी। गुरुभाई श्री एन.आर. यादव जी की पत्नी श्रीमती शारदा देवी ने कहा, "हम तो चलती ट्रेन पर नहीं चढ़ेंगे।" भाई जी ने कहा, "जाने दीजिए मत चढ़िये, अब तो हम लोग दूसरी ट्रेन से चलेंगे। विलम्ब तो काफी हो जायेगा। लेकिन किया ही क्या जाये? श्री गुरुदेव की जो इच्छा होगी, वही होगा एवं हम लोगों का उसी में कल्याण भी निहित है।" इस समय तक ट्रेन करीब सौ फीट से आगे जा चुकी थी एवं इनके रिश्तेदार श्री उमारतन श्री ट्रेन के स्टार्ट हो जाने के बाद प्लेटफार्म नम्बर चार पर आने वाली सीढ़ियों से अपने परिवार के साथ धीरे–धीरे उतर रहे थे। अचानक ट्रेन रुक गयी। ट्रेन के यकायक (अचानक) रुकने के बाद हमारे गुरुभाई दम्पति ट्रेन पकड़ने की नीयत से ट्रेन की तरफ तेजी से आगे बढ़े। ट्रेन का रुकना देखकर उनके रिश्तेदार भी जो सीढ़ियों से प्लेटफार्म नम्बर चार पर धीरे–धीरे आ रहे थे तीव्र गति से हमारे गुरुभाई दम्पति के पास आ गये एवं उन लोगों का

टिकट उन्हे दे दिये। उसके पश्चात् दोनों रिश्तेदारों ने आपस में शिष्टाचारिक व्यवहार (प्रणाम–आर्शीवाद) किया एवं उसके बाद हमारे गुरु भाई दम्पति उस रेलगाड़ी में सवार हुए। ईश्वरीय विधान ऐसा था कि जहां इन लोगों का मिलन हुआ, उस डब्बे में सवारियों की भीड़ बिल्कुल ही नहीं थी। हमारे गुरुभाई दम्पति उस डब्बे में जब आराम से बैठ गये तो ट्रेन अगले स्टेशन के लिए रवाना हुई। ट्रेन ने जब धीरे–धीरे अपनी यात्रा आरम्भ की तो हमारे आदरणीय गुरुभाई बहन के रिश्तेदार दम्पति ने कहा, ''पिछले चार दिनों से हम लोग श्री गुरुदेव योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज एवं दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी की कृपाओं की घटनायें सुन रहे थे, एव आज उनकी कृपा को हम लोगों ने अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देख लिया।''

इस ट्रेन का आउटर सिग्नल हरा है एवं इस समय ट्रेन को रुकने का कोई स्पष्ट कारण नजर नहीं आता। यदि मान लिया जाये कि ट्रेन किसी कारण वश ही रूकी हो तो भी उसका पूरा–पूरा लाभ आप लोगों को मिला। यदि यह ट्रेन चली जाती और आप लोग इस पर सवार नहीं हो पाते तो आप लोगों को घंटो दूसरी ट्रेन के लिए इन्तजार करना पड़ता। हम तो श्री गुरुदेव भगवान के विषय में अधिक नहीं जानते परंतु हमें ऐसा आभास हो रहा है कि यह ट्रेन आप लोगों के मनोभाव जानने के बाद श्री गुरुदेव भगवान की कृपा से ही रुक गयी थी। ऐसी कृपाओं का स्मरण करते हुए, हमारे एक आदरणीय गुरु ने भजन लिखा है, जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं–

मेरे प्रभुजी सँवाई वाले, सबका दु:ख हरते है।
सिद्ध गुफा है धाम मगर, सबके दिलों में रहते हैं।
बच्चे किस हाल में हैं, ये देखते रहते हैं।
बच्चों के भावों को वे पूरा करते हैं।

OOO

भक्तिरेवेनं नयति भक्तिरेवेनं दर्शयति।
भक्तिवशः पुरुषों भक्तिरेव भूयसि।।
(श्रुति)

भक्ति के द्वारा ही परमात्मा प्राप्त होता है, भक्ति से भगवान के दर्शन होते हैं, भगवान भक्ति के ही वश में हैं।

महाप्रभु चन्द्रमोहन जी का प्रार्दुभाव

अवनीश कुमार भटनागर, सहारनपुर

कुर्तुम अकुर्तम महाशक्ति वाले सिद्ध योगेश्वर महाप्रभुजी श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपनी सिद्धेश्वरता को जगत में बिल्कुल न दर्शाते हुए साधारण वेष में रहकर अति दुर्लभ सिद्धयोग विद्या को जगत में प्रचारित प्रसारित करके अति साधारण जीवों तक को सुलभ करा दिया और साथ ही दिव्य शक्तिपात देकर आत्म साक्षात्कार कराकर अर्न्तजगत में जीवो का प्रवेश कराया। सिद्धाश्रम हिमालय के गुप्त यौगिक साधनों को अतिकृपा करके जगत में साधारण जनों तक को सुलभ करा दिया।

दिव्य प्रादुर्भाव–

योगेश्वर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने गण्डकी नदी नेपाल में स्थित अपने पूर्व जन्म के आश्रम में अपने अति वृद्ध शरीर का त्याग करके ब्रह्म तेजोमयी शरीर से सारे भारत का आकाश मार्ग से भ्रमण किया, परन्तु योग्य माता–पिता न मिल सके। एक समय जब वही ब्रह्म तेज हरियाणा प्रान्त के ऊपर से आकाश गमन कर रहा था, तो इन्हें अपने माता–पिता बनने योग्य एक ब्राह्मण दम्पत्ति दिखाई दिये। इन्होंने माता चलती देवी जी के उदर में प्रवेश किया, और पूज्य पिता पण्डित देवी राम जी को स्वप्न में प्रकट होकर यह कहा कि माता जी को आप ऐसा आहार दें, जिससे हमारा शरीर गर्भ में ही परिपुष्ट हो जाये। प्रार्दुभाव का समय अश्विन मास की श्री विजय दशमी दिन बुधवार सन् 1909 प्रातः पौने चार बजे ब्रह्म मुहूर्त जगत में दर्शाया। आने वाला सन् 2009 श्री गुरुदेव महाप्रभु चन्द्रमोहन जी का शताब्दी वर्ष होगा। प्रसन्नता की बात है कि वह आज लाखों हृदयों में आस्था पुरुष के सिंहासन पर विराजित है। इनके लाखों शिष्यों के मन में इनके प्रति अपार श्रद्धा है। हमें आशा ही नहीं बल्कि परम विश्वास है कि महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की शताब्दी बहुत ही

धूमधाम से मनायी जाएगी।

शिक्षा–

योगेश्वर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी को बाल्यकाल से ही सब वर्णाक्षरों का ज्ञान था जबकि वह किसी विद्यालय में उस समय तक नहीं गये थे। आगे चलकर उन्होंने अनेक विद्यालयों में विद्या अध्ययन किया जिसमें अमृतसर एवं लाहौर के विद्यालय प्रमुख हैं।

दीक्षा–

योगेश्वर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की दीक्षा सिद्ध लोकाधिपति योगीश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज से श्री गुरु पूर्णिमा पर्व से अगले दिन योग साधन आश्रम ऋषिकेश में 13, 14 वर्ष की आयु में हुई थी। महाप्रभु श्री रामलाल जी ने महामन्त्र के रूप में इनको वह परम दिव्य मंत्र प्रदान किया जो भूले से भी किसी के कान में पड़ जाये तो तत्काल समाधि लग जाये और जो श्री रामलालजी महाराज ने अपने शिष्य समाज में अन्य किसी शिष्य को प्रदान नहीं किया।

महातपस्वी जीवन–

बाल्यकाल में 5 वर्ष की आयु से ही अनायास ही आप एक पाँव पर खड़े होकर जंगल में तप करने लग गये थे। बाल्यकाल की आप की तपस्थली श्री अलुपुर धाम में राजबाहे के किनारे आज भी सुरक्षित है। महाप्रभु श्री रामलाल जी के श्री चरणों में आने से पूर्व एवं बाद में तीव्रतम तपश्चर्यामय जीवन व्यतीत किया। आप ने श्री अलुपुर धाम के अतिरिक्त अमृतसर, लाहौर, श्री सँवाईधाम, चण्डीपर्वत, हरिद्वार, वृंदावन, ऋषिकेश आदि स्थानों पर घोरतम तप किया। चण्डीपर्वत पर आप वर्ष में चार माह अवश्य समाधिस्थ रहा करते थे, वह स्थान नीलेश्वर महादेव से ऊपर की ओर है। तपस्या के 4 माह में से 2 माह तो भयंकर गर्मी के होते थे जिसमें वनों के पत्थर आग की भांति तपते थे। ऐसे पत्थरों पर ही बैठकर आप समाधिलीन रहते थे। और शेष 2 माह भयंकर सर्दी के होते थे, जिसमें सर्दी के समय यदि वर्षा आ जाती थी तो अपनी धोती का एक हिस्सा खोलकर सिर पर चादर की भांति तान लेते थे और तपस्या लीन रहते थे, परंतु यदि ओले पड़ने लगते थे तो वह ओले उस चार में इकट्ठा हो जाते थे और धीरे–धीरे पिघलकर श्री चन्द्रमोहन जी के शरीर पर ही ठण्डे जल के रूप में गिरते थे। ऐसा भीषण तप सद्गुरुदेव प्रभु चन्द्रमोहन जी ने सारा जीवन किया। जिससे वह त्रिलोकी में सूर्य की भांति प्रकाशित है और अन्यों को भी प्रकाशवान व ऊर्जावान बना रहे हैं।

सिद्धेश्वर सद्गुरु रूप में–

सद्गुरु रूपेण भूतले प्रकटथित्वा शरणागतउद्धारक:।
संस्कारी आत्मानांकल्याणकारक: चन्द्रमोहन भगवतेमय नम:।।

महाप्रभु श्री चन्द मोहन जी महाराज को श्री रामलालजी महाप्रभु ने 19, 20 वर्ष की

आयु में ही दीक्षा देने का महान कल्याणकारी आदेश दिया था। श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने महाप्रभु जी से कहा कि दीक्षा देना नहीं चाहता क्योंकि इससे छठा हिस्सा पुण्य नष्ट हो जाता है। श्री रामलाल महाप्रभु जी ने आदेश दिया कि तुम्हारा कोई पुण्य नष्ट नहीं होगा। तुम एक बूँद किसी को दोगे तो तुम्हारी तत्काल सौ बूँद बढ़ जायेंगी। तुम निश्चिन्त होकर योग दीक्षा दो। गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी उस समय ऋषिकेश में रहते थे उन्होंने फिर प्रार्थना की 'हे महाप्रभु जी! मेरे पास यहाँ एक आर्य सन्यासी आये हैं जो मुझसे दीक्षा लेना चाहते हैं।' श्री रामलाल जी ने फिर आदेश दिया कि तुम निश्चिन्त होकर दीक्षा-दो तुम सन्यासियों को ही नहीं वसन्यासियों के बाप को भी दीक्षा दे सकते हो। आगे चलकर महाप्रभु श्री चन्द्र मोहन जी के श्री चरणों में लाखों व्यक्तियों की शरणागति हुई। एक परिपूर्ण सिद्धेश्वर सद्गुरु के रूप में महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी का धरा पर प्रादुर्भाव हुआ।

श्री सिद्धगुफा पीठाधीश्वर–

जिस समय महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज श्री सिद्धगुफा से आकाश गमन करके कैलाश को चले गये और बारह वर्ष पश्चात् पुनः गुरु का बाग संवाई पधारे और अपनी गुफा को प्रणाम करके वापस लौट चले। तो लोगों ने उन्हें पहचानकर आग्रह पूर्वक रोक लिया और श्री महाप्रभु जी ने अपने योग साधन आश्रम ऋषिकेश का पता लोगों को बताया और लोगों का ऋषिकेश आना जाना श्री महाप्रभु जी के चरणों में होने लगा। संवाई के लोग बराबर श्री महाप्रभु जी श्री रामलालजी से प्रार्थना करते कि आप अपने गुरु का बाग संवाई वाले आश्रम पर भी कोई ब्रहमचारी भेजिये, जब संवाई भक्तों ने बार–बार और बहुत अधिक मात्रा में महाप्रभु जी से प्रार्थना की तो उन्होंने अपने सर्वयोग्य महायोगी शिष्य श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को गुरु का बाग संवाई भेज दिया। वहाँ पर रहकर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने तीव्रतम योग प्रचार किया। प्रातः से लेकर दिन के दो बजे तक नित्य प्रति योग साधन कराया करते थे, जिससे रोगियों को शतप्रतिशत लाभ होता था।

स्वामी श्री मुलखराज जी महाराज के सामने श्री रामलाल महाप्रभु जी ने यह कहा था कि अरे अभी तो वो ही हमारी शरण नहीं आया है जिसके द्वारा ये संवाई के लोग हमारी शरण में आयेगें। संवाई धाम से श्री गुरुदेव जी महाराज के द्वारा किये गये विशाल योग प्रचार को देखकर स्वामी श्री मुलखराज जी महाराज यह कहा करते थे कि श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज ने हरिद्वार में जो शब्द कहे थे वह चन्द्रमोहन जी के लिए कहे थे। महाप्रभु श्री रामलालजी की इच्छा थी कि संवाई के सिद्धपीठ से श्री चन्द्रमोहन जी द्वारा सारा योग प्रचार का कार्य हो इसलिए गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी ने श्री सिद्धगुफा का नाम विश्व विख्यात बना दिया।

सिद्धपीठ श्री सिद्धगुहयाः संवाईस्थलस्य सिद्धपीठाधिश्वरः।
योगध्वज रक्षक योगेश्वरः चन्द्रमोहनभगवते नमो नमः॥

चमत्कारी महायोगेश्वर–

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा के नाम से सवाई में विशाल योग केन्द्र की स्थापना करने के पश्चात् दिन दूनी रात चौगुनी भीड़ वहाँ बढ़ने लगी। गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी प्रातः से योग साधन साधको एवं रोगियो को कराते और दोपहर दो बजे तक बराबर कराते रहते इससे सभी लोगों को स्वास्थ्य लाभ एवं मन की एकाग्रता भी बनने लगी। बहुत लोगों की ऊँची–ऊँची ध्यान स्थितियां बनने लगी। श्री चन्द्रमोहन गुरुदेव जी की कृपा से बड़े–बड़े चमत्कार देखने में आने लगे सभी आगन्तुको को मनोवांछित फल प्राप्त होने लगे, इससे महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी की ख्याति चहुओर फैलने लगी। हजारों निःसंतान दम्पतियो को सन्तान सुख प्राप्त हुआ, हजारो निर्धनो को उत्तम व्यवसाय, नौकरी एवं व्यवसायों में तरक्की, श्री गुरुदेव जी की कृपा से प्राप्त हुई। महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी सिद्धशक्ति सम्पन्न कुर्त्तुम अकुर्तुम महाशक्ति वाले महायोगेश्वर हैं उनके द्वारा असंभव को भी संभव कर दिखाया गया। वह एक स्थान पर होते हुए भी अनेकों स्थानों पर अपने भक्तों को दिव्य चेतना प्रदान करते रहे, उनके द्वारा किये गये चमत्कारिक कार्यो को शाब्दिक रूप देना निश्चित ही अति कठिन कार्य है।

विश्व विख्यात महायोगेश्वर–

महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी की ख्याति दिनों दिन बढ़ने लगी। उन्होंने अनेकों अखिल भारतीय एवं विश्वयोग सम्मेलनों की अध्यक्षता की और अति दुर्लभ शक्तिपात क्रिया का नजारा प्रस्तुत किया। आपने अनेक विदेशी वैज्ञानिक जिज्ञासुओं को भी शक्तिपात देकर विस्मय मे डाल दिया। वे सभी विदेशी लोग श्री सिद्धगुफा के दर्शन करने श्री सवाई धाम आये और सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से योग दीक्षा लेकर अपने–अपने देशों को गये और वहाँ पर जाकर योग एवं श्री सिद्धगुफा का प्रचार किया, जिससे विश्व के अनेक देशो मे सद्गुरुदेव योगेश्वर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी की ख्याति फैल गई, जिससे विश्व के अनेक देशों से लोग इनके दर्शन को आने लगे और बाद मे अपने देश में इनसे पधारने के लिए भी बार–बार आग्रह करने लगे, श्री सद्गुरुदेव जी कभी विदेश नहीं गये। वे हमेशा कह देते, 'अरे अभी तो सुधारने के लिए अपना देश ही बाकी है। विदेश तो हम तब जायें जब यहाँ यह कार्य पूर्ण हो गया हो।'

वर्तमान समय में योगेश्वर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के हजारों शिष्य प्रशिष्ययोग का प्रचार–प्रसार देश–विदेश में कर रहे हैं। योगेश्वर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के पवित्र संकल्प से ही चहुओर योग का डंका बज रहा है। अब करने कराने वाली शक्लें कोई भी हो सकती है, पर संकल्प श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी का ही कार्य कर रहा है। उन्होंने कहा भी

OOO

हे योगिराज प्रभु रामलाल योगेश्वर हे भगवान।
जन्म दिवस के योग पर्व पर बारम्बार प्रणाम।

– अमित कुमार मिश्र –

श्री सिद्धयोग पत्रिका हमारी,
गुरुवर सम महान।
सत्यम शिवम् सुन्दरम्
प्रभु रामलाल भगवान्।।
योग योगेश्वर रामलाल प्रभु
सिद्धयोग नर तन धारी,
चन्द्रमोहन गुरुदेव हमारे
रामलाल प्रभु अवतारी
उन्नीस सौ अड़सठ मे गुरुवर,
सिद्धयोग को विस्तारे,
निराकार को साकार रूपक,
दे अवनि अवतारे,
गुरुदेव की लीला को कोई सका न जान
सत्यम शिवम् ....
गुरुदेव की वाणी हमरे,
तुमरे घर आने लगी,
श्री महाप्रभु जी के स्वरूप की
लीला दर्श दिखाने लगी,
श्री गुरुदेव जी के यौगिक
सत्संगों का हुआ आभास
हमारी भी आयेगी बारी,
लगने लगी तब मन की आस
श्री गुफा की झाकी की अजब निराली शान
सत्यम शिवम
खेल रही थी खुशियाँ
गुफा सिद्ध के आगन में,
पता नहीं पर सोच रहे थे,
क्या गुरुवर मन में,
हाय! बिलखता छोड़ गुरुवर,
निज श्री धाम गए,
जगत पिता के जाते ही
हम सारे अनाथ भये
रो रही थी धरती सारी रोता आसमान
सत्यम् शिवम् ....
श्री गुरुदेव की कृपा से
श्री गुरुवर काज विस्तारा,
दासलाल जी महाराज ने
सिद्धयोग को सम्हारा,
श्री गुरुवर के सम हमको,
यह लल्ला लल्ली है कहती
कभी गले से हमको लगाके,
प्यार, प्यार से है करती,
यही आँसू पोछेगी अब
कि जब आँखो मे आएँगे,
यही रास्ता बतलायेगी
कि जब अँधियारे छाऐगें
यही लल्ला कह बोलेगी
यही अब थपकी मारेगी
यही गुरुदेव के सम
सबको पुचकारेगी,
यही सर्व दुख नाशन हारा यही मुक्ति प्रकाम,
सत्यम शिवम्.........
श्री रामनवमी को श्री प्रभु जी,
हमारे अवतारे
उसी पर्व से पत्रिका के
सदस्य बनते हम सारे,
आओ मिल जुल कर हम
श्री प्रभु जी का काज करें,
श्री सिद्धयोग पत्रिका का
तन मन धन से विस्तार करे
हे गुरुवर तेरे चरणों में कोटि–कोटि प्रणाम
सत्यम् शिवम् ....

प्रार्थना

श्री सद्‌गुरु समान दाता नहीं तीन लोक के माहि।
सत् वस्तु वकसो वही, जाको अन्त न आहि।।
तुम दाता मैं मंगता श्री गुरुदेव दयाल।
योग प्रेम वर्षा करऊ काटो सब जंजाल।।
पिता से माता सौ गुना करती सुत सों प्यार।
माता में हरि सौ गुना हरि सौ गुरु सौ बार।।
सात द्वीप नवखण्ड में सद्‌गुरु से बड़ा न कोय।
कर्ता करे न कर सके सद्‌गुरु करे सो होय।।
अड़सठ तीर्थ श्री सद्‌गुरु चरण परबी होत अखण्ड।
सहजो ऐसो धाम ना सकल अण्ड ब्रह्माण्ड।।
सब पर्वत स्याही करुं घोरु समुन्दर जाय।
धरती का कागज करुं श्री सद्‌गुरु स्तुति न समाय।।
ऐसी कृपा प्रभु जी कीजिये श्री चरण कमल लिपटाय।
आठ पहर चौसठ घड़ी सुन्दर दर्श दिखाय।।
ऐसी कृपा प्रभु जी कीजिये श्री चरण कमल लिपटाय।
आठ पहर चौसठ घड़ी मनहर दर्श दिखाय।।
ऐसी कृपा प्रभु जी कीजिये श्री चरण कमल लिपटाय।
आठ पहर चौसठ घड़ी आत्म रूप लखाय।
ऐसी कृपा प्रभु जी कीजिये श्री चरण कमल लिपटाय।
आठ पहर चौसठ घड़ी कोई श्वास न खाली जाय।।
नाशवान संसार से चित्त को देओ मोड़।
बहिर्मुखी प्रवाह से प्रभु जी अन्तर को देओ जोड़।।
अजर अमर अशरण शरण अविनाशी अविकार।
आदि प्रभु करुणायतन सो विनवहुँ बारम्बार।।
सुरपति नरपति पतित गति श्री गंगाराम जी के लाल।
गति मति के तुम अधिपति करुणासिंधु दयाल।।
सुरपति नरपति पतित गति श्री गंगाराम जी के लाल।
गतिमति के तुम अधिपति आये प्रभु श्री रामलाल।।
श्री गुरुचरण कमल प्रणाम मम जो दायक फल चार।
बुद्धिहीन इस पतित को लीजे नाथ उबार।।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव–देव।।

सपने में मेरे गुरुजी आये!

कवि नही जो कविता लिखू—गायक नहीं जो गाऊं।
योगी राज की कृपा है जो पढ़ कर ही सुनाऊं।।
सपने में मेरे गुरु जी आए, महिमा कही ना जाए रे।
धोती कुर्ता पहने थे वो, तेज सहा ना जाए रे।।
तेज सहा ना जाए रे, महिमा कहीं ना जाए रे।
सपने में मेरे गुरु जी आए, महिमा कही ना जाए रे।
बैल बजी दरवाजा खोला, सामने भाग्य विधाता थे,
कर दण्डवत् आसन दीन्हा, कोमल चरण पखारे थे
प्रेम मगन आरती किन्हीं, मन्द—मन्द मुस्काए रे।
सपने में———
मीठा—मीठा भोज बनाकर, थाली मे सजाए दिया
गौ रस मे केसर या कर, सिद्धेश्वर को पेश किया
कर जोरी प्रार्थना किन्हीं, रूख—रूख भोग लगाए रे।
सपने में———
दाता जी यों कहन लगे, अब तो आराम करना है
चार बजे उठ कर हमको, जल्दी सवॉई जाना है
श्री चरणों मे सेवा पाई, योग निद्रा आई रे।
सपने में———
सवॉई जाने से पहले, कुछ अमृत कण बरसाए थे
धीरे—धीरे याद करूँमैं, सर्वेश्वर जो फरमाए थे
''अधम'' सपना टूट गया, गुरु जी—गुरुजी पुकारु रे।
सपने में———

जगदीश राय बंसल 'अधम'

ताँत भी तेरा मन भी तेरा

जीवन बीता तेरे चरनन
और कहीं ना लगता मन
आशीष दे दो श्री चरणों में
अर्पित कर दूँ सारा तन
तन भी तेरा, मन भी तेरा
बुद्धि सहित सारा जीवन
ढूँढ रहा हूँ घूम घूमकर
भू के सारे वन उपवन
जीवन———
काशी ढूंढ—नेमि ढूंढा
करके सारा तीर्थाटन
उत्तर देखा— दक्षिण देखा
आप मिले गिरि गोवर्धन
स्वरूप आपका छैल छबीला
करते यहाँ नित लीला
देख रहा है मोहन आपका

मोहन स्वरूप योगी

शून्य + शून्य हमेशा शून्य रहेगा

दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर

हम कभी अकेले नहीं होते हैं। न तो माँ के गर्भ में और न जन्म के बाद। सच्ची आत्मा सीमा रहित है, यह सर्वव्यापी है, अस्तित्व के रूप में कोई सीमा नहीं है लेकिन मन, शरीर और भाषा के स्तर पर हम अस्तित्व को मुझे, तुम्हें और उन्हें के रूप में विभाजित करते हैं।

मेरा शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि से एक रिश्ता है, वे इतने पास हैं फिर भी वास्तविक स्वात्म से पर्याप्त दूर हैं, एक दूसरे से लिपटी हुई है और अब भी अलग। हम एक रेखा नहीं खींच सकते हैं कि शरीर का कहाँ अन्त होता है और कहाँ मन की शुरुआत होती है और उसका अन्त होता है और स्वात्म शुरू होता है। मन 'पदार्थ' का गूढ़ रूप है और शरीर 'मन' का स्थूल रूप है। मन और पदार्थ एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं एक कान्टम भौतिक शास्त्री कहेगा पदार्थ और ऊर्जा दो विभिन्न विद्यमानताएँ नहीं हैं। पदार्थ का स्त्रोत अकेली ऊर्जा होती है और पदार्थ, ऊर्जा और पदार्थ के बीच में बदलता रहता है।

मन अदृश्य है और शरीर दृष्टव्य है। इसलिए हमारी शरीर से पहचान और संगति इतनी गहरी है कि हम अपने को केवल शरीर के रूप में देखते हैं। वास्तविकता क्या है? वास्तविकता है कि स्वात्म, शरीर, मन, भावनाएँ, विचारों और चेतना का पूर्ण योग नहीं है। 'मैं' जिससे हम सबंधित हैं– भ्रमात्मक 'मैं' है। 'मैं' जिसको हम जानते हैं– उसे मन या शरीर से ज्यादा करना है लेकिन हमारी वास्तविक 'मैं' अस्पष्ट रहती है। कैसा व्यंग्य है कि 'मैं', मैं को नहीं जानता है।

अपने को जानना नातेदारी बनाने का प्रथम कदम है अपने मन और शरीर के प्रति ही नहीं लेकिन दूसरे के साथ भी यह दूसरा पति, पत्नी, माँ, पिता, भाई या कोई भी हो सकता है। अगर हम एक बार समझ गये हैं कि हमारा 'मन' कैसे कार्य करता है और जैसे हमने भावनाओं का उतार–चढ़ाव मन में समझ लिया है तो हम बेहतर सुसज्जित हो जाते हैं और भावनाओं के साथ नहीं बहते हैं।

आप को अपनी गलत फहमियाँ समझनी पड़ती हैं और बुद्धिमत्ता और चिन्तन से उन पर कार्य करना शुरू करते हैं। परिवार और समाज में इतना ज्यादा शोरगुल, विरोध होता है क्योंकि हम ज्यादा भावात्मक वजन लिए होते हैं। आपको इसे छोड़ना सीखना पड़ता है।

जीवन हमें परिस्थितियाँ देता है, समाधान नहीं। परिस्थितियाँ हमें बुद्धिमत्ता प्रदान करती हैं। अधिकांश रिश्तों में आधारभूत समस्या वही रहती है। ''मैं दरिद्र हूँ, दूसरा भी दरिद्र है।'' जब मैं कहता हूँ कि दरिद्र तब मेरा अर्थ एक आदमी से है जो सत्य स्वात्म के भाव से

वंचित है। हम दूसरों से भिखारियों से हाथ मिलाकर धनवान होना चाहते हैं। किसी न किसी तरह शून्य + शून्य = शून्य ही रहेगा।

आपको यह सच्चाई जाननी पड़ती है, कुछ नहीं, न तो व्यक्ति और न चीजें आपको धनवान बना सकती हैं। कोई भी आपके जीवन को अर्थ नहीं दे सकता है। इसलिए प्रशंसा, हमदर्दी या प्रेम के लिए दूसरों के पीछे मत दौड़िए।

अपने अंदरूनी अंतमार्ग की तलाश कीजिए। उपयुक्त ऊर्जा की खोज कीजिए और इसमें आनन्द लीजिए। अपने स्वात्म को प्रेम और सम्मान कीजिए। हर चीज अच्छी या बुरी भावनाओं की प्रतिध्वनि बन जायेगी। इस शरीर को धन्यवाद दीजिए। हर छोटे आनद को धन्यवाद दीजिए जो जीवन तुम्हें लाता है। ऐसे मुसुकुराइये जैसे पहले कभी मुसकुराये न हो और अन्दर गहरा गोता लगाइये। कबीर दासजी ने कहा है–

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठि।
हैं बपुरा बूढ़न डरी, रही किनारे बैठि।।

गलतियाँ भुस की तरह पानी की सतह पर तैर जाती हैं और जो सच्चाई की तलाश में है उसे गहरा गोता लगाना चाहिए।

अपने स्वात्म को इस क्षण की अच्छाई से भिगोइये और हर दिन इसी से शुरू होने दीजिए और इसी से अन्त कीजिए। तुरत ही आप इस नये जीवन को प्रेम करने लगेंगे। जब आप मजबूत, थर्राने वाले, कर्मठ होते हैं तो आप चुम्बक की तरह कार्य करने लगते हो और आप सभी अच्छे व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करोगे। व्यक्ति उन व्यक्तियों की संगति पसंद करते हैं जो अपनी निजी संगति में आनंद लेते हैं। जब आप सच्ची जानकारी से सुसम्पन्न हैं तो आप वास्तविक सम्राट बन जाते हो।

OOO

आप जितना कुछ देंगे उसका हजार गुना होकर वह आपके पास लौट आयेगा। इसके लिये धीरज रखना आवश्यक है। हमारा जन्म देने के लिये है लेने के लिये नहीं। जो कुछ भी प्राप्त हो उसे उदारता पूर्वक खुशी–खुशी बाँटते चलो। सुखी जीवन का यही एक राजमार्ग है।

देही का स्वरूप

डा. जे.एन. राय टेकमा

प्रश्नगत विषय को हृदयगंम करने से पहले पृष्ठभूमि देना आवश्यक है। गीता का प्रत्येक अध्याय अपना विशेष महत्व रखता है। गीता का प्रथम अध्याय विषाद् से योग सिद्ध होने को सूचित करता है। 'अर्जुन' शब्द ऋजुता सरलता का बोधक है अर्जुन शोक से गुह्यमान था, हृदय मन्थन से पीड़ित था, पर उसने अपना सारथ्य श्री कृष्ण भगवान को सौंप दिया था। वह ईश्वर को चलाना नहीं चाहता था, बल्कि वह चाहता था कि ईश्वर उसे चलायें।

गीता की यह विशेषता है कि वह पुराने शब्दों का व्यवहार करती है, पर उन शब्दों को नया अर्थ प्रदान कर देती है। गीता के द्वितीय अध्याय ''सांख्य योग का उपयोग विवेक व विचार के अर्थ में हुआ है।

अर्जुन अपनी देह और देह के सम्बन्धों को इतना सच मान बैठा है कि युद्ध नहीं करने की बात करता है। एक वर्णसंकटता और उससे उत्पन्न होने वाले दोषों की चर्चा कर अपने ज्ञान को प्रदर्शित करता है, तो दूसरी ओर शोक से पीड़ित हो, आंसू बहाता हुआ, भिक्षा द्वारा जीवन–यापन की बात कहता हुआ अपने अज्ञान को प्रकट करता है। श्री कृष्ण भगवान उसके इसी अज्ञान पर नश्तर चलाते हुए कहते हैं– अनार्यो के जीवन में दिखाई देने वाला ऐसा कश्मल (मोह) ऐसे अनुपयुक्त समय में तेरे मन में कैसे उत्पन्न हुआ? यहां तो बल की, शौर्य की बात तेरे मन में उठनी चाहिए थी। तब अर्जुन अपने को टटोलता है। आत्म निरीक्षण करता है। बलपूर्वक मोह के परदे को उठाने की चेष्टा करता है। अर्जुन देखता है कि श्री कृष्ण भगवान जो कह रहे हैं, वही ठीक है। श्री कृष्ण भगवान ने कहा:–

अशोच्याशोचस्त्वं प्रज्ञावादाश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः।।

श्री कृष्ण भगवान कहते हैं कि अर्जुन! तू प्रज्ञावादों को तो बोल रहा है, ज्ञान की बड़ी–बड़ी बातें तो कर रहा है, पर तेरा कार्य इन बातों के अनुरूप नहीं है। क्यों? इसलिए कि तू उनके लिए शोक करता है जो शोक करने योग्य नहीं। तू पण्डितों की सी बातें तो कर रहा है, पर तू क्या जानता नहीं कि जो वास्तविक पण्डित होते हैं, वे न तो 'गतासूनों' के लिए शोक करते हैं, न 'अगतासूनो' के लिए।

गीता का उपदेश आत्मस्वरूप के ज्ञान से प्रारम्भ होता है, क्योंकि एक मात्र आत्मा का ज्ञान ही अज्ञान भ्रम से उत्पन्न शोक को दूर करता है। प्रस्तुत श्लोक में:–

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।

श्रीकृष्ण भगवान जीव की नित्यता प्रदर्शित करते हैं। ईश्वर तो नित्य है ही, और जीव भी ईश्वर स्वरूप होने के कारण नित्य है। श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन से कहते हैं कि ये राजा मेरे समान पहले भी थे और आगे भी रहेंगे। शरीर की दृष्टि से वे नश्वर और बन्धे हुए हैं, पर आत्मा की दृष्टि से वे अविनाशी और शाश्वत है। अतएव अर्जुन! तू उनके लिए शोक न कर।

श्री कृष्ण भगवान प्रस्तुत श्लोक:-

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।।

में अर्जुन से कहते है कि यह देही आत्मा अपने इस शरीर में क्रम से जैसे बालपन, तारूण्य और बुढ़ापे का अनुभव करता है। ठीक उसी प्रकार सहजता से वह इस देह को छोड़ कर दूसरी देह धारण करता है।

अतः श्री कृष्ण भगवान ने आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को समझाते हुए कहा कि जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र पहन लेता है उसी प्रकार देही आत्मा पुराने शरीर को छोड़ कर नये शरीर ग्रहण करता है। देही का वास्तविक स्वरूप यही है।

OOO

जितने मत उतने पथ। अनन्त मत हैं, और अनन्त पथ। एक को बलपूर्वक पकड़ना पड़ता है। छत पर जाने की चाह है, तो जीने से भी चढ़ सकते हो; बाँस की सीढ़ी लगाकर भी चढ़ सकते हो। परंतु एक पैर इसमें और दूसरा उसमें रखने से नहीं होता। एक को दृढ़ भाव से पकड़े रहना चाहिए। ईश्वर लाभ करने की इच्छा हो तो एक ही रास्ते पर चलना चाहिए। और दूसरे मतों को भी एक–एक मार्ग समझना। यह भाव न हो कि मेरा ही मार्ग ठीक है, और सब झूठ है; द्वेष न हो। किसी की निन्दा न किया करो– एक कीड़े की भी नहीं।

श्री राम लाल प्रभवे नमः | योग भेदी है मेरा योग में माया नहीं। योग साधना के बिना कोई मुझे पाया नहीं।। | श्री चन्द्रमोहन गुरुवे नमः

योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पावन चरणों में सादर समर्पित

प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय

श्री चित्रगुप्त जी का मंदिर (पानी वाली धर्मशाला), झाँसी

(प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद से सम्बद्ध)

द्वारा आयोजित

32वाँ अखिल भारतीय योग एवं संगीत सम्मेलन

स्थान : पैवेलियन हॉल श्री लक्ष्मी व्यायाम मंदिर, झाँसी

दिनांक 1 से 5 नवम्बर 2008

परम करुणा निकेतन सद्गुरुदेव भगवान योगिराज अनंत श्रीचन्द्रमोहन जी महाराज (श्री सिद्धगुफा सवाई, आगरा) की करुणा कृपा से गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी उपरोक्त तिथियों में 32 वां अखिल भारतीय योग सम्मेलन श्री लक्ष्मी व्यायाम मंदिर, झाँसी के पैवेलियन हॉल में आयोजित किया जा रहा है। आज योग के महत्व को सारा विश्व स्वीकार कर चुका है। अतः अपने जीवन को योगमय बनाने, जटिल रोगों से छुटकारा पाने एवं अपने आपको स्वस्थ रखने की कामना रखने वाले सभी जिज्ञासुओं एवं साधकों से अनुरोध है कि वे इस पांच दिवसीय योग शिविर में भाग लेकर अपने जीवन को योगमय बनायें। ऐसे अद्भुत एवं दिव्य सत्संग में भाग लेना परम सौभाग्य का विषय है।

योग सिद्धान्तों के गूढ़ रहस्यों को सरल शब्दों में समझाने हेतु आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा (नई दिल्ली) सहित योग के अनेक उद्भट विद्वान पधार रहे हैं जो योग के अष्टांगों, योग की साधना पद्धति के सभी अंगों को विस्तार से समझायेंगे।

इसके अतिरिक्त संकीर्तन भजन ध्यानाभ्यास एवं योगासनों के कार्यक्रम प्रतिदिन सम्पन्न होंगे।

कार्यक्रम

आरती पूजन, गीता पाठ, संकीर्तन ध्यानाभ्यास एवं प्रवचन

1 से 5 नवम्बर 2008 प्रातः 7 बजे से 10.30 तक सायं 7 से 10.30 बजे तक

संगीत प्रतियोगिता

1 एवं 2 नवम्बर 2008 प्रातः 11 बजे से 6.30 बजे तक

पारितोषिक वितरण

3 नवम्बर 2008 प्रातः 11 बजे से

संगीत सम्मेलन

3 एवं 4 नवम्बर 2008 दोपहर 2.30 से सायं 8.00 बजे तक

श्री गुरु जी एवं प्रभु जी का पूजन एवं भंडारा

5 नवम्बर 2008 दोपहर 11 से 3.30 बजे तक

मंगला आरती प्रातः 5 बजे, आसन व्यायाम नेती क्रिया प्रातः 6 से 7 बजे तक

आयोजक समिति :

- अध्यक्ष: डॉ. हरीमोहन गुप्ता, • उपाध्यक्ष: जनार्दन नगरिया (एड), प्रदीप जैन (पत्रकार)
- महामंत्री: इं. सीताराम गुप्ता, • मंत्री: रामसेवक अग्रवाल • उपमंत्री: राकेश बिल्लाने
- कोषाध्यक्ष: रामदास जैन, • आय–व्यय निरीक्षक: राकेश सौतीया
- व्य.स्थ: नरेन्द्र गोस्वामी, रवि मोहन माथुर, एवं समस्त कार्यकर्ता

सम्पर्क :
कृष्णकान्त झा, प्राचार्य
मोबाईल: 9235834487
मीडिया प्रभारी
दिनेश भार्गव

प्रभु श्रीरामलाल संगीत महाविद्यालय एवं योग सत्संग मंडल, झाँसी

आराम सत्य की कसौटी नहीं है, प्रत्युत सत्य आरामदायक होने से बहुत दूर है। यदि कोई सचमुच सत्य की खोज का इरादा करे तो उसे आराम के प्रति आसक्त न होना चाहिए। सब कुछ छोड़ देना कठिन काम है, किंतु ज्ञानी को यह अवश्य करना पड़ता है। उसे पवित्र बनना ही होगा, सभी कामनाओं को मारना होगा और अपने को शरीर के साथ तादात्म्य से रोकना होगा। केवल तभी उसके अन्तःकरण में उच्चतर सत्य प्रकाशित हो सकेगा। बलिदान आवश्यक है और निम्नतर जीवात्मा का यह बलिदान ऐसा आधारभूत सत्य है, जिसने आत्मत्याग को सभी धर्मों का एक अंग बना दिया है। देवताओं के प्रति की जाने वाली सभी प्रसादक आहुतियाँ आत्म–त्याग की ही, जिसका कि कुछ वास्तविक मूल्य है, अस्पष्ट रूप से समझी जाने वाली अनुकरण हैं और अयथार्थ आत्म–समर्पण से ही हम यथार्थ आत्म–साक्षात्कार कर सकते हैं। ज्ञानी को शरीर–धारण के निमित्त चेष्टा न करनी चाहिए और न इच्छा करनी चाहिए। चाहे संसार गिर पड़े, उसे दृढ़ होकर परम सत्य का अनुसरण करना चाहिए। जो 'धुनों' का अनुसरण करते हैं, वे ज्ञानी कभी नहीं बन सकते। यह तो जीवन भर का कार्य है; नहीं, सौ जीवों का कार्य है। बहुत थोड़े लोग ही अपने भीतर ईश्वर के साक्षात्कार करने का साहस करते हैं और स्वर्ग, साकार ईश्वर तथा पुरस्कार की सभी आशाओं का त्याग करने का साहस रखते हैं। उसे सिद्ध करने के लिए, दृढ़ इच्छा की आवश्यकता होती है, आगा–पीछा करना भी भारी दुर्बलता का चिन्ह है। मनुष्य सदैव पूर्ण है, अन्यथा वह कभी ऐसा न बन पाता। किंतु उसे यह प्राप्त करना है। यदि मनुष्य कार्य–कारणों से बद्ध हो तो वह केवल मरणशील हो सकता है। अमरत्व तो केवल निरुपाधिक के लिए ही सत्य हो सकता है। आत्मा पर किसी वस्तु की क्रिया नहीं हो सकती—यह विचार सिर्फ भ्रम है; किंतु मनुष्य को उस 'तत्' के साथ अपना तादात्म्य, स्वात्मनि क्रियाभाव, करना ही होगा, शरीर या मन से नहीं। उसे यह बोध होना चाहिए कि वह विश्व का द्रष्टा है, तब वह उस अद्भुत अस्थायी दृश्यावली का आनन्द ले सकता है, जो उसके सामने निकल रही है। उसे स्वयं से यह भी कहना चाहिए कि ''मैं विश्व हूँ, मैं ब्रह्म हूँ।'' जब मनुष्य 'वास्तव में' स्वयं का उस एक आत्मा के साथ तादात्म्य कर लेता है, उसके लिए सभी कुछ सम्भव हो जाता है और सभी पदार्थ उसके सेवक हो जाते हैं। जैसा श्री रामकृष्ण ने कहा है—जब मक्खन निकाल लिया जाता है तो वह दूध या पानी में रखा जा सकता है और दोनों में से किसी में न मिलेगा; इसी प्रकार मनुष्य जब आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है तो वह संसार द्वारा दूषित नहीं किया जा सकता।

- स्वामी विवेकानन्द

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

प्रेषक कार्यालय

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सर्वाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

OCTOBER 2008

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री मन्नमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दाऊलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सर्वाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566

सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दाऊलाल शर्मा